अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष-40, अंक-17, 16-30 अप्रैल, 2017

18 अप्रैल : भूदान दिवस

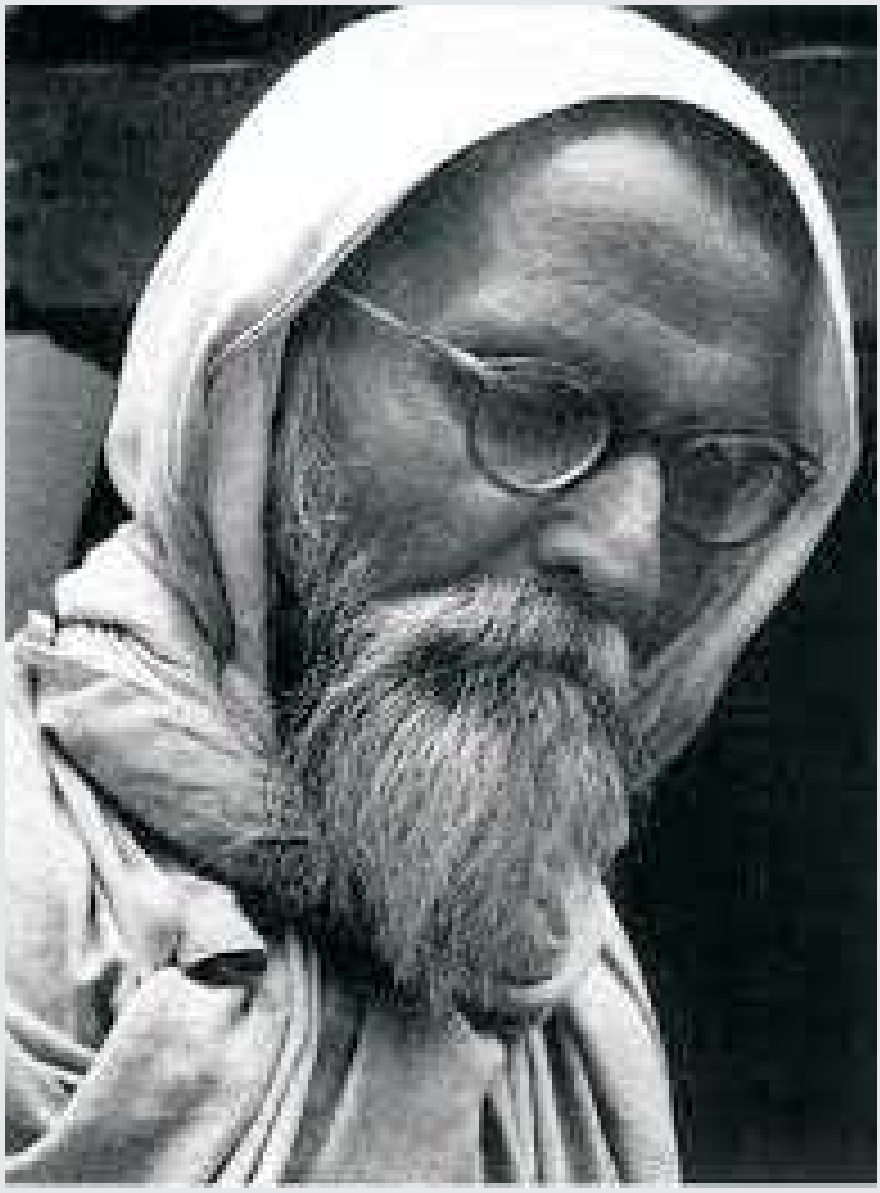

भूदान से भूमिवानों का उपकार

"जो जमीनें आपके पास आ पहुंची हैं, वे दूसरों की हैं और आपको वे प्रेमपूर्वक उन्हें दे देनी चाहिए, भले ही आप आज उनके स्वामी हों। मैं यह भी नहीं कहता कि सबको समान भूमि मिलनी चाहिए। गणित की समानता मैं नहीं चाहता, लेकिन उंगलियों की समानता जरूर चाहता हूं। ये पांचों उंगलियां बिल्कुल समान न होते हुए भी एक-दूसरे के सहकार से रहती हैं और लाखों काम कर देती हैं।"

–विनोबा

सर्व सेवा संघ
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
सर्वोदय जगत
सत्य, अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक

वर्ष : 40, अंक : 17, 16-30 अप्रैल, 2017

प्रधान संपादक
बिमल कुमार
मो. : 9235772595
संपादक
अशोक मोती
मो. : 9430517733

संपादक मंडल
डॉ. रामजी सिंह भवानी शंकर 'कुसुम'

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ, साधना केन्द्र
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : sssprakashan.com

शुल्क

मूल्य	:	05 रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये

खाता संख्या : 383502010004310
IFSC No. UBIN-0538353
Union Bank of India
Rajghat, Varanasi

इस अंक में...

1. चम्पारण सत्याग्रह एवं लोकसत्ता... 2
2. यह बहादुरी नहीं है... 3
3. भूदान से भूमिवानों का उपकार... 5
4. नमक, धूल और फूल... 9
5. राष्ट्रकवि दिनकर की साहित्य-साधना... 14
6. लघु-कथा : नदियां और समुद्र... 16
7. गांधी, खादी और सरकार... 16
8. पाठकों के पत्र... 19
9. रामधारी सिंह दिनकर की कविताएं... 20

संपादकीय

चम्पारण सत्याग्रह एवं लोकसत्ता निर्माण

चम्पारण का सत्याग्रह केवल ब्रिटिश उपनिवेशवादी-साम्राज्यवाद को ही चुनौती नहीं था, बल्कि वह योरोप केन्द्रित आधुनिकता की अवधारणा को खत्म करने की दिशा में भी पहला कदम था। उस सत्याग्रह ने न केवल औपनिवेशिक शोषण की नीति को खारिज किया, बल्कि पूंजीवादी साम्राज्यवाद के प्रगति व विकास के दावे को भी खारिज कर दिया था।

तथाकथित आधुनिक सभ्यता को नकारने के पीछे एक बुनियादी आधार यह था कि गांधी किसी भी सभ्यता के मूल आधार में अहिंसा को रखते थे। आधुनिक राज्य न केवल हिंसा की केन्द्रीयता को बढ़ाने वाले बने, बल्कि अधिकाधिक शोषणकारी-दोहनकारी शक्तियों के पक्षधर भी बनते चले गये। लोक की व लोक की सत्ता का दायरा संकुचित करते चले गये। इस प्रक्रिया को रोकने के लिए गांधी लोकसत्ता के निर्माण के पक्षधर थे। इसी कारण आधुनिक राजसत्ता के दायरे से बाहर, लोक जितना कुछ अपने स्तर पर कर सकता था, उसे बढ़ावा देना तथा ग्राम स्वावलम्बन को बढ़ावा देना, उनकी अहिंसक क्रांति की नीति का एक हिस्सा था।

इस प्रकार चम्पारण सत्याग्रह गांधीजी की एक वैश्विक सोच का हिस्सा था, केवल भारत के स्वातंत्र्य संघर्ष की विशिष्ट रणनीति नहीं। एक नये वैश्वीकरण के निर्माण की दस्तक थी, जो सत्य, अहिंसा एवं शोषणमुक्त संबंधों पर लोक स्तर से निर्मित होता।

चम्पारण सत्याग्रह खेती को बंधुआकरण से मजदूरों का बंधुआकरण करने की नीति को भी चुनौती देने वाला था। किसानों को तीन कट्ठा पूंजीवादी-साम्राज्यवादी शोषण के लिए निकालना पड़ता था। बाजार के लिए और पैसे के लिए कृषि में उत्पादन को बढ़ाने से, कृषि सबसे पिछड़ा क्षेत्र बन गया, कृषि में कार्य करने वाले मजदूर सबसे पिछड़े स्तर के मजदूर बन गये तथा कृषि से जुड़ी महिलाएं सर्वाधिक दुर्दशा की शिकार हो गयीं। इसी कारण गांधीजी इस प्रयोग में जुट गये कि खेती को और गांव के संसाधनों को जिस सीमा तक बाजार के दुष्चक्र से बाहर लाकर ग्राम स्वावलंबन की ओर हम बढ़ेंगे, उसी सीमा तक महिलाओं की स्थिति में सुधार होगा तथा उस सीमा तक बाजार के शोषण से मुक्ति मिलेगी। चम्पारण में रचनात्मक कार्यक्रम इस दिशा में एक प्रारम्भिक किन्तु गंभीर प्रयोग थे।

गांधीजी जिस आदर्श गांव की कल्पना करते थे, उस ओर तात्कालिक गांवों से कैसे जाया जा सकता था, इसके लिए तीन कदम अपरिहार्य थे : (1) गांव के अंदर सामाजिक व आर्थिक असमानता खत्म करने की दिशा में बढ़ें; (2) गांव का शोषण खत्म करने की दिशा में बढ़ें तथा (3) प्राकृतिक संसाधनों का वैश्विक दोहन बंद हो।

इनमें से प्रथम के लिए समाज की आंतरिक संरचना में बदलाव की जरूरत थी तथा अन्य दो केन्द्रीकृत औद्योगिक विकास का हिस्सा थे।

लोकसत्ता के निर्माण का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष गांव के अंदर सामाजिक व आर्थिक असमानता खत्म करना था। सत्याग्रह, रचनात्मक कार्यक्रम एवं आश्रमों की स्थापना के माध्यम से गांधीजी इस कार्य को निरंतर बढ़ा रहे थे। सत्याग्रही को तथा रचनात्मक कार्यक्रम को समानता का सगुण रूप प्रकट करना था। आश्रमों के अंदर इसकी धार निरंतर तेज होती रहती थी। सत्याग्रही का व्यक्तिगत जीवन तथा सार्वजनिक जीवन एक रूप हो रहा था।

केन्द्रीकृत औद्योगिक विकास के विकल्प की बात करना और भी कठिन बात थी। कांग्रेस के अधिकांश नेता पूंजीवाद एवं उपनिवेशवाद का तो विरोध करते थे, किन्तु केन्द्रीकृत औद्योगिक विकास के पक्षधर थे। जबकि केन्द्रीकृत औद्योगिक विकास, पूंजी के केन्द्रीकरण पर ही निर्भर करता है। पूंजी के केन्द्रीकरण के विकल्प में स्थानीय संसाधनों, स्थानीय श्रम एवं स्थानीय सामाजिक संबंधों को सहजीवी व सह-ऊर्जावान बनाना जरूरी है, जो इन तीनों को उच्च से उच्चतर स्तर पर ले जाने वाला हो। यह लोकसत्ता के निर्माण से ही सम्भव था।

और अन्त में एक सवाल खुद से। क्या भूदान में प्राप्त भूमि के वितरण में अहिंसा एवं अहिंसक समाज निर्माण का दर्शन हुआ है? यदि नहीं, तो हमें अपने में क्या सुधार लाना है, इस पर भी विचार करें। बिमल कुमार

हिन्दू-मुसलमानों से...

यह बहादुरी नहीं है

❑ गांधी

आज के और 2 जून के बीच थोड़े ही दिन रह गये हैं। इन दिनों मैं रोज ही एक विषय को किसी-न-किसी पहलूपर बोलूंगा, जो आप लोगों ने शांति और संयम रखकर मुझे अपनी ओर खींच लिया है और दिल खोलकर रख देने को बाध्य किया है। कितना अच्छा हो कि जो लोग अपने को इस देश की संतान मानते हैं, वे ठीक तरह से सोचें और बहादुरी से चलें। यह मुश्किल काम जरूर है, जबकि अखबारों में पागलपन से भरी हुई आग और मारपीट की भयंकर खबरें छपती रहती हैं। मैं इस बात की कोई चिन्ता नहीं करता कि 2 जून को क्या होने वाला है या माउंटबेटन साहब आकर क्या सुनायेंगे। मेरी ऐसी आदत ही नहीं है कि सरकार क्या कहेगी, इसकी चिन्ता में रहूं। सन् 1915 में मैं यहां आया, तब से लेकर आज तक मैंने ऐसा ही किया है।

मेरा जन्म तो यहीं का है। 22 वर्ष की उम्र में मैं यहां से चला गया। मानो मैं बनवास में रहा और बीस बरस तक दक्षिण अफ्रीका में रहने के बाद यानी अपनी असली जवानी बिताकर मैं यहां लौटा। इस बीच मैंने कोई पैसे इकट्ठे नहीं किये। मैंने शुरू में ही समझ लिया था कि भगवान ने मुझे ऐसा ही बनाया है कि पैसों की ओर मैं न जाऊं, पर उसकी खिदमत करूं। ईश्वर ने मुझसे कहा कि तू दूसरा काम करेगा तो सफल नहीं होगा। सेवा का तरीका *गीता* ने मुझे यह बताया है कि यह समझ कि मेरे पास जो है, वह मेरा नहीं है, 'तेरा है' (ईश्वर का है)। तब प्रश्न यह सामने आया कि वह 'तू' कहां पर है? जवाब मिला कि संसार के सारे व्यक्तियों में। यानी जो मनुष्य-जाति की सेवा करता है, वह ईश्वर की सेवा करता है।

तब हम *'ईशोपनिषद्'* के उस मंत्र पर आ जाते हैं, जिसमें कहा है—"सारा जगत ईश्वर से ही भरा है।" जब मैं त्रावणकोर में था तब रोजाना इस मंत्र का अर्थ सुनाता था। उसमें आगे कहा है— *'तेन त्यक्तेन भुंजीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।'* यानी सब कुछ छोड़कर काम कर। किसी का कुछ भी लेने का लालच मत कर।

बात यह सादी है, बच्चा भी समझ सकता है, पर वह उसका भेद नहीं समझ सकता। हम बड़े हैं, हमें उसका भेद समझना चाहिए, इसलिए मैंने आपको यह बड़ी बात सुना दी। इसका भेद अगर हम समझ लें तो फिर हम किसके लिए लड़ें? यह तो बड़ी बात हो गयी। अब जो सुनाना चाहता हूं उस बात पर आऊं। आज मैंने थोड़ा कष्ट किया है। मेरे पास इतना समय कहां कि रोज मैं अपने भाषण को अंग्रेजी में लिख दिया करूं और हमारे अखबार जो अंग्रेजी में चलते हैं, उन्हें तो मेरा भाषण छापना चाहिए ही, परंतु हमारे अखबारनवीस उसे अंग्रेजी में किस प्रकार दे। वे बेचारे अंग्रेजी पूरी तरह कहां समझ पाते हैं? वैसे तो वे लोग बी. ए., एम. ए. होते हैं लेकिन इतनी अंग्रेजी नहीं जानते हैं कि मैं जो हिन्दुस्तानी में कहता हूं उसका सही मतलब अंग्रेजी में समझा सकें। क्योंकि वह भाषा उनकी नहीं है, दूसरों की है। यहां तो मैं हिन्दुस्तानी में कहूंगा, क्योंकि वह तो करीब-करीब मेरी भी और सबकी पूरी तौर से मातृभाषा है। इसलिए उसमें मैं जो कुछ कहूंगा वह आप सही-सही समझ सकते हैं। यह सुशील नैयर मेरे भाषण को अंग्रेजी में कर तो लेती है, क्योंकि वह खासी अंग्रेजी जानती है, फिर भी उसमें कमी रह जाती है। इसलिए आज मैंने थोड़ा समय निकालकर अंग्रेजी में लिख रखा है। यहां मैं उसकी बात को ध्यान में रखते हुए बात कहूंगा। परंतु अखबारों में वही छपेगा जो मैंने लिख रखा है।

तो शुरू में उस खत की बात बता देना चाहता हूं, जिसमें मुझे प्रार्थना चालू रखने के बारे में कोसा गया है और लिखा है कि झूठा है, ठीक तरह से जवाब भी नहीं देता। ऐसा जो लिखते हैं, वे बालक हैं। उम्र में भले ही सयाने हो गये हों, पर बुद्धि में बालक ही रहे हैं।

उनको मेरी यह बात चुभती है कि मैं यही क्यों कहता हूं कि 'मरो-मरो', ऐसा क्यों नहीं कहता कि पहले 'मारो-काटो और फिर मरो'। वे चाहते हैं कि मैं हिन्दुओं से तलवार का बदला तलवार से और आग का बदला आग से लेने को कहूं। लेकिन मैं अपने सारे जीवन को विरुद्ध नहीं जा सकता और मानव-कानून की जगह पाशविक कानून की हिमायत करने का अपराधी नहीं बन सकता। जब कोई मुझे मारने आयेगा तब मैं यह कहते-कहते मरूंगा कि ईश्वर तेरा भला करे। इसके बदले उनका आग्रह है कि मैं पहले मारने को कहूं और बाद में मरना पड़े तो मरने को कहूं। अगर मैं ऐसा कहने को तैयार नहीं हूं तो वे मुझे कहते हैं कि 'तुम अपनी बहादुरी अपनी जेब में रखो और यहां से जंगल में भाग जाओ।' पर वे ऐसा क्यों कहते

हैं? इसलिए कि मुसलमान सबको मारते हैं। तो क्या इसी बात पर हिन्दू भी मारने को उतारू हो जायें और फिर दोनों दीवाने बन जायें? क्या मुसलमान बिगड़ जायें तो हम भी बिगड़ें? कहा जाता है कि सब मुसलमान खराब हैं, गंदे दिल के हैं ओर यह भी बताते हैं कि सब हिन्दू फरिश्ते हैं। लेकिन मैं इस बात को नहीं मान सकता।

एक मुसलमान महिला का खत मेरे पास आया है। उसमें लिखा है कि जब आप *'ओज अबिल्ला'* ईश्वर की स्तुति करते हैं तो उसे उर्दू नज्म में क्यों नहीं करते? मेरा उत्तर यह है कि जब मैं नज्म पढ़ने लगूंगा, तब उस पर खफा होकर मुसलमान पूछेंगे कि अरबी का तर्जूमा करने वाले तुम कौन होते हो? और वे पीटने आयेंगे, तब मैं क्या कहूंगा?

सही बात यह है कि जो चीज जिस भाषा में कही गयी और जिस पर तप किया गया, उसी भाषा में उसका माधुर्य होता है। बिशपों ने अंग्रेजी *'बाइबिल'* की भाषा को बहुत परिश्रम से मधुर बनाया है और वह लैटिन से भी अंग्रेजी में किस तरह मीठी हो गयी। अंग्रेजी सीखना चाहने वाले को 'बाइबिल' तो सीखनी ही चाहिए। *मैं अंग्रेजी भाषा का द्वेषी नहीं, उसका माधुर्य छोड़ने को तैयार नहीं, क्यों हमारे पास ऐसे कवि नहीं हैं जो वैसी ही मधुरता से उनका अनुवाद कर सकें।*

आज मैं अहिंसा के शाश्वत नियम की बात नहीं कहूंगा हालांकि उस पर मेरा दृढ़ विश्वास है। यदि सारा हिन्दुस्तान उसे सोच-समझकर अपना ले तो वह बेशक सारी दुनिया का नेता बन जायेगा। यहां तो मैं केवल यह कहना चाहता हूं कि कोई आदमी विवेक के अलावा और किसी चीज के आगे न झुके। लेकिन आजकल तो हमने विवेक बिलकुल ही भुला दिया है। विवेक तभी कायम रह सकता है जब हममें बहादुरी हो। आज जो चल रहा है वह बहादुरी नहीं है। इंसानियत भी नहीं है। हम बिलकुल जानवर जैसे बन गये हैं। हमारे अखबार रोज-रोज हमें सुनाते हैं कि यहां मुसलमानों ने क्या हिन्दू और क्या मुसलमान दोनों ही बुरा काम करते हैं। *यह मैं मानने को तैयार हूं कि मुसलमान ज्यादा बरबादी कर रहे हैं, पर जब दोनों ही बुराई करते हैं तब किसने ज्यादा बुराई की और किसने कम, यह जानना बेकार है। दोनों गलती पर है।*

खबर आयी है कि हमारे नजदीक ही गुड़गांव में कई गांव जल गये हैं। किसने किसके मकान जलाये हैं, इसका पता लगाने की कोशिश में मैं हूं पर सही पता लगाना कठिन है। लोग कहेंगे कि जब इतने करीब में यह सब हो रहा है तब यहां बैठा मैं लंबी-चौड़ी बातें कैसे सुना रहा हूं? जब आप लोग यहां आ गये हैं और हमारी बदकिसमती से गुड़गांव में यह हो रहा है तब अपने मन की बात मैं आपसे कहूंगा ही। और *मेरा यही कहना है कि हमारे चारों ओर अंगार जलते रहें तो भी हमें तो शांत ही रहना है। और चितस्थिर रखते हुए हमें भी इस अंगार में जलना है। हम क्यों दशहत के मारे यह कहते फिरें कि दूसरी जून को यह होने वाला है, वह होने वाला है? जो बहादुर होंगे, उनके लिए उस दिन कुछ भी होने वाला नहीं है, यह यकीन रखिये।* सबको एक बार मरना ही है। कोई अमर तो पैदा हुआ नहीं है तो फिर हम यही निश्चय क्यों न कर लें कि हम बहादुरी से मरेंगे और मरते दम तक अपनी ओर से बुराई नहीं करेंगे। जान-बूझकर किसी को मारेंगे नहीं। एक बार मन में ऐसा निश्चय कर लेंगे। तब आप स्थिरचित रहेंगे और किसी की ओर नहीं ताकेंगे। *जो डरा-धमकाकर पाकिस्तान लेना चाहेंगे उनसे कह देंगे कि इस तरह रतीभर भी पाकिस्तान मिलने वाला नहीं है। आप इंसाफ पर रहेंगे, हमारी बुद्धि को समझा देंगे, दुनिया को समझा देंगे तो आप पूरा का पूरा हिन्दुस्तान ले जा सकते हैं। जबरदस्ती से तो हम पाकिस्तान कभी नहीं देंगे।*

और अंग्रेजों से क्या कहूं? अगर वे मिशन-योजना से हटते हैं तो वे दगाबाज हैं। हम दगाबाज न बनेंगे और न बनने देंगे। हमारा और उनका संबंध 16 मई की घोषणा से है। उसी के आधार पर विधान-परिषद बनी है। अंग्रेजों को सत्ता सौंप कर चले जाना चाहिए। संविधान-सभा द्वारा बनाये गये संविधान के अनुसार स्वतंत्र भारतीयों की जो सरकार बने, वह बाद में कुछ भी कर सकती है—वह चाहे तो भारत को एक रखे अथवा उसे दो या अधिक हिस्सों में बांट दे। उसके मुताबिक हम चलेंगे। इसके अलावा हम कुछ नहीं जानते कि अगर हम अपने देश की भलाई की खातिर वास्तविकता का सामना करें तो सबसे पहले हम देश में शान्ति कायम करेंगे और देश के दंगा-फसाद करने वाले लोगों से सख्ती और साहस के साथ कह देंगे कि जब तक वे अपनी खूनी कार्रवाई बंद नहीं करते तब तक 16 मई के बयान में कोई फेरफार नहीं होगी। दूसरा कुछ तभी हो सकता है जब हम खामोश हो जायें, लड़ाई-दंगा न रहे और हम शांत होकर बैठें। पर हम दबेंगे नहीं।

इन चार दिनों में इतना पाठ आप सीख लें तो सब-कुछ मिलने वाला है। भले ही वे सारे हथियार जो बटोरे हैं, आजमा लें। जब हम इतनी बड़ी सल्तनत के मुकाबले में डट गये और उनके इतने सारे हथियारों से नहीं डरे, उसके झंडे के सामने सिर नहीं झुकाया तो अब हम क्यों लड़खड़ाएं जबकि आजादी मिलने ही वाली है। हम ऐसा सोचने की गलती न करें कि अगर हम न झुके—चाह वह झुकना पाशविक शक्ति के आगे ही क्यों न हो—तो आजादी हमारे हाथों से निकल जाएगी। अगर हम ऐसा सोचेंगे तो हमारा नाश निश्चित है।

मैं लंदन से आने वाले तारों से विश्वास नहीं करता। मैं यह आशा नहीं छोड़ूंगा कि ब्रिटेन गत वर्ष के 16 मई के कैबिनेट मिशन के वक्तव्य की इबारत और भावना से बाल

बराबर भी नहीं हटेगा, जब तक कि भारत की पार्टियां अपने-आप कोई फर्क करने को रजामंद न हो जायें। इस काम के लिए दोनों को एक जगह मिलना होगा और मानने लायक हल निकालना पड़ेगा। कैबिनेट मिशन के उस बयान को कांग्रेस और ब्रिटिश सरकार, दोनों ने मंजूर कर लिया है। अगर उनमें से किसी ने भी उसे नामंजूर किया तो वह विश्वासघात होगा।

अंग्रेज अधिकारियों को जानना चाहिए कि लोग उनके बारे में क्या-क्या बातें कर रहे हैं। यहां के अंग्रेज अफसरों के लिए कहा जाता है कि वे बदमाश हैं। इन दंगों में उनका हाथ है, वे ही हमें लड़ाते हैं लेकिन जब तक यह गंभीर आरोप ठीक-ठीक साबित नहीं हो जाता, तब तक हमें उन पर इल्जाम नहीं लगाना चाहिए। मैं तो कहूंगा कि अगर हम लड़ना नहीं चाहते तो लड़ाई कैसे होगी? और माउंटबेटन साहब का काम आसान नहीं है। वे बड़े सेनापति हैं, बहादुर हैं, पर अपनी उस बहादुरी को वे यहां नहीं बता सकते। यहां पर वे अपनी सेना लेकर नहीं आये हैं। यहां वे फौजी वर्दी में नहीं आये हैं, सिविलियन बनकर आये हैं और उनका कहना है कि मैं अंग्रेजों से हिन्दुस्तान छुड़वा देने के लिए आया हूं। अब हमें देखना है कि वे किस तरह जाते हैं। माउंटबेटन साहब को अपने गवर्नर-जनरल के पद को शोभित करना है। उन्हें अपनी सारी चतुराई और सच्ची राजनीतिज्ञता बतानी है। अगर वे जरा भी चूक जायेंगे, जरा भी सुस्ती कर जायेंगे तो ठीक न होगा। इसलिए हम और आप सब मिलकर प्रार्थना करें कि भगवान उनको सन्मति दे और इतनी बात वे जान लें कि 16 मई की बात से बाल भर भी फरक जबरदस्ती से वे नहीं कर सकते। अगर करते हैं तो वह दगा होगा, दगा देने से किसी का भला नहीं होता। दगा का परिणाम कभी अच्छा नहीं हो सकता। ❑

(29 मई, 1947 को नयी दिल्ली की प्रार्थना सभा में दिया गया भाषण।)

18 अप्रैल : भूदान दिवस

भूदान से भूमिवानों का उपकार

समाज को टुकड़े करना अधर्म

❑ **विनोबा**

आजकल मैं भू-दान मांगता हूं। जिनके पास जमीनें नहीं हैं, उन्हें भूमि देना चाहता हूं। आखिर यह सारा गोरखधंधा क्यों कर रहा हूं? इसीलिए कि आज समाज में ऊंच-नीच माने जाने वाले सभी दर्जे मिटने चाहिए। यह कैसे हो सकता है कि जो खुद खेती नहीं कर सकते, उनके हाथ में खेती हो? और जो खुद खेती नहीं जानते, वे उसे दूसरों के हाथ से काम करवाते हैं और जो जानते हैं, वे मजदूर के तौर पर काम करते हैं। इसीलिए वे पूरी लगन से काम नहीं कर पाते, क्योंकि पैदावार पर उनका हक नहीं रहता। फिर उन्हें मजदूरी भी पैसे में दी जाती है। आखिर यह सब क्यों सहा जाय? क्या इस अवस्था को हम बंद कर दें, तो कोई अन्याय होगा? जिसके पास जमीन है, उसे अगर मैं समझाऊं कि भाई, तुम अपनी सौ एकड़ में से पचास एकड़ रखो और पचास एकड़ दे दो, तो क्या इसमें मैं उस पर मित्र के नाते अपना प्रेम प्रकट नहीं कर रहा हूं? अगर वह कहे कि ''आज तक मेरा जीवन कैसे बना है, उसे मैं निभाना चाहता हूं'', तो मैं समझाऊंगा कि भाई, जिसके शरीर का वजन जरूरत से ज्यादा बढ़ गया हो, उसका वजन कम करना, उस पर दया करना, प्रेम करना ही है। इसी तरह जिसका वजन घट गया हो, उसकी हड्डियों पर कुछ मांस चढ़ा देना भी हमारा कर्तव्य हो जाता है। फिर फाजिल वजन वाले को अपना वजन कम करने के लिए अपनी जीवन-पद्धति में कुछ तो फर्क करना ही पड़ेगा। हाथी की तरह चलने वाला अगर घोड़े की तरह दौड़ने लग जाय, तो यह परिवर्तन उसे सहर्ष स्वीकार करना चाहिए।

उंगलियों की समानता : क्या ईश्वर की योजना ऐसी हो सकती है कि कुछ लोगों के पास जमीन हो और कुछ के पास न हो? मैं यह नहीं कहता कि जिनके पास अधिक जमीन है, वह उन्होंने सब-की-सब अन्यायपूर्वक ही प्राप्त की है। उन्होंने यह उद्योगपूर्वक भी हासिल की होगी, परंतु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि उसे रखने का हक उन्हें प्राप्त हो गया। जो जमीनें आपके पास आ पहुंची हैं, वे दूसरों की हैं और आपको वे प्रेमपूर्वक उन्हें दे देनी चाहिए, भले ही आप आज उनके स्वामी हों। मैं यह भी नहीं कहता कि सबको समान भूमि मिलनी चाहिए। गणित की समानता मैं नहीं चाहता, लेकिन उंगलियों की समानता जरूर चाहता हूं। ये पांचों उंगलियां बिल्कुल समान न होते हुए भी एक-दूसरे के सहकार से रहती हैं और लाखों

काम कर देती हैं। पांचों समान नहीं, इसलिए ऐसा भी नहीं कि एक तो एक इंच लंबी है और दूसरी एक फुट। यानी अगर समानता नहीं है, तो अत्यधिक विषमता भी नहीं चाहिए, तुल्यता होनी चाहिए। इन पांचों में अलग-अलग शक्तियां हैं। उन सारी शक्तियों का विकास होना जरूरी है। इसी को 'पंचायत-धर्म' कहते हैं।

भगवान् की योजना में ही विकेन्द्रीकरण : अगर हम समझ लें कि हरएक की सामाजिक और आर्थिक योग्यता समान है, तो ये भेद मिट सकते हैं। आपने अहिंसा की शक्ति से ही स्वातंत्र्य प्राप्त किया है, जबकि उसके लिए दुनिया के दूसरे मुल्कों को हिंसा के तरीके अख्तियार करने पड़े। किन्तु यह निश्चित समझिये कि उसके लिए अनेक खतरों का सामना करने के बाद, अब आप अगर दूसरा कदम आर्थिक और सामाजिक कायम करने का नहीं उठाते, तो आपका स्वातंत्र्य खतरे में है। इसके लिए परमेश्वर की विकेन्द्रित योजना की तरह हमें भी विकेन्द्रित योजनाओं पर अमल करना होगा, सहकारी संस्थाओं द्वारा आर्थिक नियंत्रण स्थापित करना होगा।

अगर परमेश्वर की योजना में विकेन्द्रीकरण न होता, तो उसे भी बम्बई से दिल्ली ओर दिल्ली से कलकत्ता घूमना पड़ता। किन्तु उसने हरएक को दो कान, दो हाथ, दो आंखें देकर आपस में सहकार करने के लिए कह दिया। अगर वह कहीं एक को चार कान और दूसरे को चार आंखें दे देता और देखना हो, तो आंख वालों की मदद से देखने और सुनना हो, तो कान वालों की मदद से सुनने को कहता, तो आज जिस तरह वह क्षीरसागर में बेफिक्र सो पाता है, नहीं हो सकता था। हमें सहकार की इस खूबी को समझना चाहिए। आज के राजनीतिज्ञ 'वन-वर्ल्ड' (एक विश्व) की बात करते हैं। किन्तु परमेश्वर के लिए 'वन वर्ल्ड' तो नक्षत्र सहित सारा त्रिभुवन ही हो सकता है। *आप कल्पना ही कर लें कि अगर परमेश्वर ने किसी एक को ही अक्ल तकसीम करने (बांटने) की मोनोपॅली (एकाधिकार) दे दी होती, तो उसके 'सप्लाई-विभाग' में कितना काला-बाजार चलता और तकसीम में कितनी गड़बड़ियां हुई होतीं। सारांश, इन सबका इलाज आम उद्योगों के पनपने में है और उसका पहला कदम है, भूमिहीनों को भूमि मिलना और दूसरा कदम है, ग्रामों में संपूर्ण ग्रामोद्योग जारी करना।*

भूमि-पुत्र का अधिकार : मैं आपसे यह जो कह रहा हूं कि भूमि-माता के हर पुत्र का उस पर हक है, वह मेरा अपना, निज का विचार नहीं है। यह तो एक वैदिक कथन है। कोई भी लड़का माता की सेवा से अपने किसी दूसरे भाई को रोक नहीं सकता। मैं तो यहां तक कहूंगा कि कोई भी शख्स किसी की भी जमीन मांगे, तो उसे मिलनी चाहिए और जमीन वालों का कर्तव्य है कि वे उसे दें। *क्या पानी मांगने पर किसी को 'ना' कहा जाता है? 'ना' कहने वाला कितना शर्मिन्दा हो जाता है, यह आप जानते ही हैं। इसी तरह जमीन मांगने पर भी 'ना' कहने में शर्म लगनी चाहिए। मैं यह समझ सकता हूं कि हम किसी को बिना परिश्रम के भोजन न दें, लेकिन अगर कोई परिश्रम का साधन मांगे, तो उसे वह मुहैया कर देना हमारा धर्म है। सरकार का भी धर्म है कि कोई भी मनुष्य उससे जमीन मांगे, तो वह उसे उसके परिवार के लिए पांच एकड़ जमीन दे दे। सरकार की यह जिम्मेदारी होनी चाहिए।*

साम्ययोग से भारत जगद्गुरु : किन्तु आज सरकार ऐसा नहीं कर पा रही है। आखिर सरकार कौन है? यहां की सरकार यहां की जनता की भावना पर ही टिकी रह सकती है। एक बार जनता यह मान ले कि जमीन पर सबका अधिकार है और वह थोड़े से लोगों के कब्जे में नहीं रह सकती, तो फिर सरकार-रूपी ताला खोलने की कुंजी तो समाज के हाथ में है। मैं यह ताला कुंजी से खोलना चाहता हूं, हथौड़े से तोड़ना नहीं चाहता। इसलिए अगर आप सब मिलकर चलें तो यहां साम्ययोग सिद्ध हो सकता है और दुनिया में हिन्दुस्तान गुरु का स्थान प्राप्त कर सकता है। दुनिया को इस समय अपेक्षा है कि हिन्दुस्तान से मार्गदर्शन मिले।

साम्ययोग की नीति

जिस तरह बुद्ध भगवान ने यज्ञ में चलने वाली पशु-हिंसा के सवाल को लेकर दुनिया में करुणा का विचार फैलाया, उसी तरह हम भी भूमि-समस्या को लेकर लोभमूलक मालकियत की कल्पना मिटाने का विचार दुनिया में फैलाना चाहते हैं। *भूदान-आंदोलन को हमने 'साम्ययोग का आंदोलन' कहा है, जो दुनिया में अन्यत्र चलने वाले 'साम्यवाद' से सर्वथा भिन्न है। साम्यवाद को हम एक ऊंचा और उदार विचार मानते हैं। साम्यवाद हर हालत में पूंजीवाद से बेहतर है, फिर भी उसमें जो कई प्रकार के दोष हैं, उनका विवरण भी हम जनता के सामने रखना आवश्यक मानते हैं। उसकी मुख्य न्यूनता है, उसका पूंजीवाद की प्रतिक्रिया के रूप में पैदा होना।* जो विचार प्रतिक्रियास्वरूप पैदा होता है, वह व्यापक नहीं हो सकता, उसका दायरा सीमित हो जाता है। इसलिए साम्यवाद में कुछ मर्यादाएं आ गयी हैं। किन्तु साम्ययोग में ऐसी कोई मर्यादा नहीं, वह एक व्यापक जीवन-दर्शन है।

उद्देश्य सीमित, पर प्रकार व्यापक रहे : आज एक भाई ने देहात के मजदूरों में श्रमदान-आंदोलन चलाने की इच्छा प्रकट की। मैंने उनसे कहा कि श्रमदान केवल मजदूरों से ही क्यों लिया जाय, कुल मानव-समाज से क्यों नहीं? यह ठीक है कि आरम्भ में मजदूर ही श्रमदान देंगे, लेकिन प्रोफेसर, व्यापारी, मंत्री आदि सभी से वह श्रमदान क्यों न मांगा जाय? हम अपना आंदोलन

मजदूरों तक ही सीमित क्यों करें? अगर हम सिर्फ मजदूरों से ही श्रमदान मांगेंगे, तो मजदूर और गैर-मजदूर, ऐसे दो टुकड़े बन जायेंगे। इस तरह टुकड़े करने से आरम्भ में ही हम अपनी ताकत घटायेंगे। इसलिए हमारा विचार ऐसा होना चाहिए, जो सारी मानवता के लिए लागू हो। चाहे उसका तात्कालिक लक्ष्य सीमित क्यों न हो, पर उसका प्रकार या तरीका व्यापक होना चाहिए। *भूदान-आंदोलन का लक्ष्य सीमित है, पर उसका तरीका सारी दुनिया को लागू होता है। सूर्यनारायण हर चीज को समान उष्णता देता है, पर कोई चीज कम उष्णता लेती है, तो कोई ज्यादा।* सूर्य-किरणों से बर्फ ही पिघलेगा, पानी नहीं, पानी तो सिर्फ गर्म हो जायेगा। पानी से मिट्टी ज्यादा गर्म होगी, मिट्टी से पत्थर और पत्थर से लोहा ज्यादा गर्म हो जायेगा। यद्यपि सूर्य किरणों का असर हर चीज पर कम-बेशी होगा, फिर भी सूर्य कभी यह नहीं कहेगा कि मैं बर्फ को पिघलाने का कार्यक्रम कर रहा हूं। वह जानता है कि मेरी किरणों से लोहा नहीं, बर्फ ही पिघलेगा; फिर भी वह कहेगा कि मैं कुल दुनिया को गर्म करने आया हूं। वह अपने प्रयोग को सीमित नहीं करेगा, इसी तरह पानी भी नारियल के पेड़ में जाने से मधुर फल पैदा करेगा, मिर्च के पास जाने से तीखा और कपास के पौधे के पास जाने से तंतुवाला फल पैदा करेगा। इस तरह पानी का अलग-अलग परिणाम होता है, पानी में चीनी और मिट्टी पिघल (गल) जायेगी, पर पत्थर या लोहा नहीं! फिर भी पानी की कोशिश सारी दुनिया पर प्रभाव डालने की होगी।

खानेवाले को श्रम करना चाहिए : सारांश, जो विचार महान होता है, वह सीमित दायरे में नहीं रहता। इसलिए हमें हरएक से श्रमदान लेना है। हमारा पराक्रम चला, तो वह जरूर हो सकेगा। हम चाहते हैं कि मालिक-मजदूर का भेद ही न रहे। हिन्दुस्तान में हर व्यक्ति प्रतिदिन कम-से-कम एक-एक घंटा श्रमदान दे। आज देश में उत्पादन बढ़ाने की बहुत आवश्यकता है। *देश के बड़े-बड़े नेता कह रहे हैं कि 'उत्पादन बढ़ाओ, उत्पादन बढ़ाओ'। लेकिन क्या खेतों और कारखानों में काम करने वाले मजदूर आठ के बदले नौ घंटे काम करें— यही कोई उत्पादन बढ़ाने का तरीका है? होना तो यह चाहिए कि श्रम की प्रतिष्ठा बढ़े। गांधीजी ने जिन्दगी भर कई प्रकार के काम किये। भंगी-काम और चमार का काम भी किया, कुष्ठ रोगियों की सेवा की, राजनीति पर व्याख्यान और गीता पर प्रवचन दिये। वे नियमित कातते थे और जिस दिन चले गये, उस दिन भी उनका कातना पूरा हो चुका था। उन्होंने यह सब इसलिए किया वे दुनिया के सामने यह विचार रखना चाहते थे कि 'जो शख्स खाता है, उसे कुछ न कुछ पैदा करना चाहिए।' इसलिए हम व्यापारी, वकील, मंत्री आदि से भी कहेंगे कि आपका काम उपयोगी है, फिर भी आपको दिन में एक घंटा उत्पादक परिश्रम जरूर करना चाहिए।*

श्रम से बुद्धि घटती नहीं, बढ़ती ही है : *कुछ लोग कहते हैं प्रधामंत्री एक घंटा खेत में काम करने के बजाय एक घंटा अधिक चर्चा करेगा, तो कितना अच्छा होगा। बाबा के बारे में भी यही कहा जाता है कि वह एक घंटा चर्खा चलाने के बजाय बोध देगा, तो ज्यादा अच्छा होगा। लेकिन लोग यह नहीं कहते कि बाबा खाने के बजाय प्रवचन देगा, छह घंटे सोने के बजाय बोधदान देगा, तो कितना सुंदर होगा। ज्ञानी खाता, सोता है, तो लोगों को आश्चर्य नहीं लगता, किन्तु वह चर्खा चलाता या चक्की पीसता है, तो आश्चर्य लगता है।* समझने की जरूरत है कि सारी मानवता के लिए कुछ चीजें बुनियादी होती हैं। यह ठीक है कि कोई शरीर-परिश्रम का काम अधिक करेगा, तो कोई बौद्धिक परिश्रम का, किन्तु दोनों को दोनों काम करने चाहिए। जिनके पास बुद्धि-शक्ति है, वे अगर थोड़ा शरीर-परिश्रम करें, तो कुछ खायेंगे नहीं, बल्कि बहुत पायेंगे। मैं यह बात अपने अनुभव से कह रहा हूं। मैंने जितना अध्ययन किया, उससे कम शरीर-श्रम नहीं किया। मैंने प्रतिदिन चार-छह घंटे विविध प्रकार के परिश्रम में बिताये हैं। उससे मेरी बुद्धि की तेजस्विता कम नहीं हुई, बल्कि बढ़ी ही।

राष्ट्र की उपासना : अगर ईश्वर की यह इच्छा होती कि कुछ लोग बुद्धि का काम करें और कुछ लोग शरीर-श्रम, तो उसने कुछ लोगों को सिर-ही-सिर दिये होते और कुछ को हाथ-ही-हाथ! ईश्वर के लिए कुछ भी असम्भव नहीं है। लेकिन उसने हरएक को दिमाग भी दिया है और पेट भी। उधर चिन्तन भी चलता है और इधर भूख भी लगती है। इसलिए यह विचार भी गलत है कि मजदूर घंटों तक शरीर-श्रम ही करते रहें। उन्हें रोज दो-तीन घंटे बौद्धिक काम का भी मौका मिलना चाहिए। क्या ऐसा हो सकता है कि कुछ लोग सिर्फ खाना खायें और कुछ सिर्फ पानी ही पियें? यह ठीक है कि फलाहार करने वाले कम पानी पीयेंगे और रोटी खाने वाले ज्यादा, फिर भी दोनों को खाना भी चाहिए और पानी भी। *इसी तरह समाज-रचना ऐसी होनी चाहिए कि हरएक मनुष्य का पूर्ण विकास हो। इसलिए हरएक को श्रम और चिन्तन, दोनों की ही प्रतिष्ठा महसूस होनी चाहिए।*

मुझे बचपन की एक घटना याद आती है। एक दिन मैं मां के पास खाना मांगने गया, तो उसने पूछा कि 'स्नान किया?' मेरे 'हां' कहने पर उसने फिर से पूछा, 'तुलसी के पेड़ को पानी पिलाया?' मैंने 'ना' कहा, तो उसने कहा, *'जब तक तुलसी को पानी नहीं पिलायेगा, तब तक खाना न मिलेगा।'* हम समझते हैं कि मां ने बड़ा अच्छा काम किया, जो मुझे पेड़ की सेवा किये बिना खाना नहीं दिया। *इस तरह जब राष्ट्र की उपासना शुरू होगी और हर माता अपने बच्चे को*

एकआध घंटा परिश्रम किये बगैर खाना नहीं देगी, तभी देश ऊंचा उठेगा।

समाज के टुकड़े करना अधर्म : *हमारा आंदोलन कुल मनुष्यों के लिए होना चाहिए। आज लोग सेवा तो करते हैं, लेकिन समाज के दो टुकड़े भी करते हैं। कोई जातिवादी होते हैं, तो 'ब्राह्मण-सभा' बनायेंगे, कोई हरिजनों में काम करेंगे। कोई 'हिन्दूसभावादी' होंगे, तो सिर्फ हिन्दुओं के ही कल्याण की चिन्ता करेंगे। इस तरह टुकड़े करना, आत्मा को चीरना या काटना बड़ी भयानक वस्तु है।*

आज जापान में जनसंख्या बहुत ज्यादा है और जमीन कम। उधर आस्ट्रेलिया में जमीन खूब पड़ी है और जनसंख्या कम है। लेकिन ऑस्ट्रेलियन जापानियों को यह कहकर उन्हें ऑस्ट्रेलिया में आने जाने नहीं देते कि *'वह हमारे बाप की जमीन है।'* वे सोचते नहीं कि बेटे तो सारी दुनिया के बेटे होते हैं। अगर पूरी मानवता का विचार करेंगे, तो ऑस्ट्रेलिया वाले प्रेम से जापान वालों को जमीन देंगे। लेकिन प्रेम से नहीं देते, तो झगड़े और खूनी क्रांति के बाद देंगे, क्योंकि जो आवश्यकता है, वह पूरी हुए बगैर मानवता का समाधान नहीं हो सकता।

सारांश, *जहां व्यापक बुद्धि से सोचते हैं, वहां मसले जल्दी हल हो जाते हैं। हम चाहते हैं कि अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी भूदान का तरीका लागू किया जाय और सारी दुनिया एक मानी जाय। हर मानव विश्व-नागरिक हो और कोई भी व्यक्ति किसी भी देश में जाकर बसे और काम करे। जब इस तरह होगा, तभी भूदान-यज्ञ सफल होगा।*

हृदय-क्षेत्र में लड़ाई : जिस तरह जातिवादी बशह्मण-बशह्मणेतर, हरिजन-परिजन आदि टुकड़े करते हैं, उसी तरह कम्यूनिस्ट भी टुकड़ों में चिन्तन करते हैं। वे समाज के दो वर्ग मानते हैं, गरीब और अमीर। लेकिन हर वर्ग में अच्छे और बुरे, दोनों होते हैं, इसलिए उनका युद्ध राम-रावण युद्ध नहीं, बल्कि कौरव-पांडव युद्ध होगा। जहां दोनों पक्षों में भले-बुरे हों, वहां उस लड़ाई के परिणामस्वरूप दोनों का नाश होता है। जहां एक ओर खालिस सत्य और दूसरी ओर खालिस असत्य हो, वहां लड़ाई में जोर आता है। हम सारी दुनिया से दान मांगते हैं, तो कुछ देते हैं और कुछ नहीं भी देते! देने वाले सब उदार पक्ष में शामिल होंगे और न देने वाले कंजूस पक्ष में। दोनों पक्षों में कुछ गरीब होंगे, तो कुछ अमीर। इस तरह गुणों के आधार पर बने पक्षों की लड़ाई हो, तो उसमें कंजूस टिक नहीं सकते। क्या कभी प्रकाश और अंधकार की भी लड़ाई हुई है? सूर्यनारायण अपनी सारी सेना लेकर आया। सामने घना अंधकार खड़ा था, जिसकी सेना में बड़े-बड़े लोग थे। फिर जोरों से लड़ाई हुई, जिसमें सूर्य की जीत हुई—क्या इस तरह कभी लड़ाई हुई है? स्पष्ट है कि जहां सूर्यनारायण आया, वहीं अंधकार खत्म हो जाता है।

साम्यवादी भी एक प्रकार के जातिवादी : साम्ययोग में हम कुल मानवता का काम करना चाहते हैं, जबकि 'कम्युनिस्ट' (साम्यवादी) और 'कम्यूनलिस्ट (जातिवादी) टुकड़े करके काम करते हैं। अक्सर कहा जाता है कि उनमें से एक 'लेफ्टिस्ट' (वाम) होते हैं और दूसरे 'राइटिस्ट' (दक्षिण) होते हैं; लेकिन हम कहते हैं कि दोनों 'रांगिस्ट' (गलत) हैं। टुकड़े कर कामकरने से वे आरम्भ में ही अपनी ताकत घटा देते हैं। कुछ मानवता को इकट्ठा करने की कोशिश की जाय, तो आरम्भ में ही ताकत बढ़ती है। *इसीलिए हिन्दू-धर्म* ने कहा है : *'गणानांत्वा गणपतिं हवामहे।'*—'सब गणों का तू गणपति है, इसलिए हम तेरा आवाहन करते हैं' इसके मानी यह है कि हम सारे समूह की इच्छा-शक्ति को अनुकूल करना चाहते हैं।

हमें खुशी है कि धीरे-धीरे कम्यूनिस्ट भी प्रेमपन्थ में दाखिल हो रहे हैं। इसका मतलब यह नहीं कि उनके अलावा दूसरे सारे प्रेमी हैं। किन्तु उन्होंने संघर्ष का एक वाद माना है। दूसरे लोग संघर्ष का वाद नहीं मानते, फिर भी लोभ के कारण संघर्ष करते हैं। *अब कम्यूनिस्ट लोग संघर्ष का तत्त्वज्ञान छोड़ विश्व-शान्ति की बातें कर रहे हैं। किन्तु विश्व-शांति कोई अभावात्मक वस्तु नहीं है। सिर्फ लड़ाई रोकने से विश्व-शांति न होगी, उसके लिए प्रेम का भावात्मक प्रयत्न करना होगा। विश्व-शांति का तरीका अमल में लाने से सारे हाइड्रोजन बम आदि यों ही खत्म हो जायेंगे। विश्व-शांति का तरीका यह है कि हम सारे समाज की सेवा करें और समाज में भेद न करें। इसी को गीता 'लोक-संग्रह' कहती है। उसके मानी है, सब लोगों को एकत्र करना और संभेद न हो, इसकी कोशिश करना। जाति, वर्ग, धर्म आदि के झगड़े करते रहोगे, तो विश्व-शांति नहीं होगी। भले ही उससे दो-चार साल के लिए युद्ध रोका जाय, जो कूटनीतिज्ञ भी किया करते हैं। लेकिन मसलों को हल किये बगैर शांति नहीं होगी और वे इसी तरीके से हल करने चाहिए कि सबके हृदय में शांति और समाधान पैदा हो। समाज के टुकड़े करके मसले हल करने की कोशिश की जायेगी, तो शांति न होगी। साम्यवादी भी एक प्रकार के जातिवादी हैं।* जातिवादियों के समान वे भी हर गांव के, प्रांत के, देश के दो टुकड़े करते हैं, जिससे सारी दुनिया में झगड़े चलते रहते हैं।

प्रेम-शक्ति या द्वेष-शक्ति : भूदान में ऐसा तरीका अख्तियार किया गया है, जिससे हर मनुष्य की सद्भावना प्रकट हो। भू-दान का विचार अमीर-गरीब, सबको लागू है। एक एकड़ वाला अगर अपनी मालकियत छोड़ेगा, तो ऐसी ताकत पैदा करेगा कि हजार एकड़ वाले को भी अपनी मालकियत छोड़नी पड़ेगी। कम्युनिस्ट लोग गरीब और अमीर का झगड़ा कराना चाहते हैं। हम उनसे कहते

हैं कि तुम्हारे गरीब और अमीर, दोनों एक ही वर्ग के हैं। गरीब को अपनी लंगोटी का अभिमान है, तो अमीर को अपनी धोती का। लोभियों का एक ही वर्ग होता है, दस रुपये वाला सो रुपये वालों की ओर देखकर मत्सर करता है; तो सौ वाला हजार वालों की ओर देखकर। *कुरान में कहा गया कि 'जन्नत (स्वर्ग) और 'दोजख' (नरक) के बीच 'बरजख' होता है।* बरजख जाने वालों की एक आंख रोती है और दूसरी हंसती है। जो आंख स्वर्ग की तरफ देखती है, वह रोती है, जो नरक की तरफ देखती है, वह हंसती है। इसलिए हर कोई ऊपर देखा करेगा, तो दुखी होगा, मत्सर करेगा और नीचे देखेगा, वह सुखी होगा, उदार बनेगा।

आज आपके सामने यही सवाल है कि आप मत्सर-शक्ति पैदा करके मसले हल करते हैं या प्रेम-शक्ति पैदा करके? भूदान-यज्ञ के जरिये प्रेम-शक्ति पैदा करके मसले हल करने की कोशिश की जा रही है। अगर साम्यवादी इस बात को कबूल करें कि हम द्वेष-शक्ति से नहीं, प्रेम-शक्ति से ही काम करेंगे, तो हम दोनों नजदीक आ सकते हैं। जहां प्रेम-शक्ति पर विश्वास हो जायेगा, वहीं वास्तव में विश्व-शांति होगी। ❑

'सर्वोदय जगत' के सभी सुहृद पाठकों, शुभचिन्तकों, लेखकों की सुविधा की दृष्टि से पत्रिका का हर अंक सर्व सेवा संघ प्रकाशन की वेबसाइट www.sssprakashan.com पर उपलब्ध है। –सं.

6 अप्रैल : दांडी नमक सत्याग्रह

गतांक से आगे...

नमक, धूल और फूल

❑ **सुमंगल प्रकाश**

यह यात्रा-वृतांत है उस बालक की जो दांडी यात्रा में शामिल थे। पढ़िए गांधी का अपने सहयात्रियों से व्यवहार, उनके प्रति प्रेम।–सं.

पहले पड़ाव पर पहुंच कर हम लोगों ने तालाब में स्नान किया और भोजन करके आराम करने के लिए लेट गये। हम लोगों के पीछे-पीछे बैलगाड़ी में लद कर चर्खे भी आये थे। तीसरे पहर हम लोगों ने सूत काता। भोजन हमको दोनों ही वक्त बना-बनाया मिल जाता था—यही गनीमत थी, नहीं तो पैदल यात्रा की थकावट के बाद उसका बोझ बहुत ही खल जाता!

किन्तु बापू के लिए विश्राम एकदम ही नहीं था। पड़ाव पर पहुंचते ही उस गांव के कार्यकर्ताओं के साथ वे वहां की समस्याओं पर बात करते और बाद को सार्वजनिक सभा में भाषण देते। हम लोगों को रोज छह-सात घंटे से अधिक ही सोने को मिल जाता था, पर बापू शायद ही कभी चार-पांच घंटे से अधिक सो पाते थे।

दांडी यात्रा में रोज लगभग दस-बारह मील का चलना होता था, जिसमें से आधे के करीब सबेरे और आधे के करीब शाम को। पर पहले दिन की यात्रा में पहला पड़ाव ही साबरमती आश्रम से बारह मील दूर था। उस दिन शाम को यात्रा नहीं हुई। लगातार, बिना आराम किये बारह मील चलने का मेरे जीवन में यह पहला मौका था। उस पर भी अपने सारे सामान से भरा हुआ एक भारी झोला कंधे से लटकाये था। रास्ते में धूल भी नाक के रास्ते इतनी ज्यादा फांकी थी कि खांसी के साथ जो खखार निकली, वह धूल से काली थी। मेरे सिर में भी तेज दर्द हो गया और शाम की प्रार्थना के बाद बहुत जल्द करीब सात बजे ही मैं सो गया।

जब सबेरे उठा तब सारे बदन में दर्द था और हरारत मालूम हो रही थी। मैंने इसे थकान ही समझा और सबके साथ नाश्ता करके छह बजे सबेरे ही दल के साथ दूसरे पड़ाव के लिए चल दिया। दूसरे दिन की यह सबेरे की यात्रा चार-पांच मील से ज्यादा नहीं थी। पर मेरे लिए वह बहुत ही दुष्कर थी। बिलकुल चला ही नहीं जाता था। बराबर कहीं बैठ जाने की इच्छा होती थी। मुझे उस वक्त बुखार चढ़ा हुआ था, यह मैं सोच ही नहीं पाया। मेरा ध्रुव विश्वास था कि वह कमजोरी पिछले दिन की थकान और सिर दर्द के कारण थी—उस पर कोई खास ध्यान देने की जरूरत नहीं थी। बुखार की शंका न होने का एक कारण यह भी था कि यदि गांधीजी को यह मालूम हो जायेगा कि मैं बीमार हूं तो मुझे रास्ते में ही छोड़ कर वे आगे बढ़ जायेंगे, यात्रा से पहले आश्रम में वे कई बार बड़ी गंभीरता के साथ कह चुके थे। उन्होंने स्पष्ट कह दिया था कि शरीर को ठीक रखना अपने हाथ में है और इसलिए रास्ते में जो भी बीमार पड़ेगा उसे वहीं छोड़ देने के सिवा कोई चारा नहीं रहेगा। रास्ते में छूट कर दल से बिछुड़ने, आश्रम वापस लौटाये जाने और इस प्रकार शहीद होने का परम अवसर गंवा देने से बड़ी और तकलीफ उस समय मेरे लिए हो ही नहीं सकती थी। और शायद मुख्यतः इसीलिए मुझे यह ख्याल ही नहीं आ सका कि मुझे बुखार आ गया है।

जब किसी तरह हम पड़ाव पर पहुंच गये तब मैंने निवृत्ति की सांस ली। मानो जीवन की सारी मंजिलें पार कर ली हों! पर अभी क्या था? अभी तो सारी ही यात्रा पड़ी थी। दोपहर को खाना खाकर जो मैं लेटा तो फिर मुझे यह पता ही न लगा कि कब शाम हो गयी और दूसरे पड़ाव के लिए प्रस्थान

करने का समय आ गया। जब सब साथी तैयार होने लगे और उन्होंने मुझे भी जगाया—मैं इस बीच ज्वर की तंद्रावस्था में प्रशांत भाव से पड़ा था—तब मानो सारी वस्तुस्थिति मेरे सामने कठोरतापूर्वक आ खड़ी हुई। शरीर जड़ होकर वहीं पड़ा रहना चाहता था। पहले-पहल उस वक्त मुझे ज्ञान हुआ कि शायद मामला कुछ ज्यादा संगीन है। हमारे दल नायक ने आकर मेरी नब्ज देखी। डर के मारे मेरा दिल धड़क रहा था। और जब उन्होंने यह घोषणा की कि मुझे बुखार है तब तो मेरी ग्लानि का ठिकाना ही नहीं रहा और अपनी सारी शक्ति लगाकर मैंने इसका विरोध किया—*''नहीं, मुझे बुखार जरा भी नहीं है, थकावट के कारण कुछ हरारत सी हो आयी होगी। मैं चलूंगा।''*

इतनी आसानी से अब मेरा पिंड नहीं छोड़ा जा सकता था। मामला गांधीजी के दरबार में पहुंचा और मुझे वहां हाजिर किया गया। प्रस्थान की सब तैयारी हो चुकी थी, केवल 10-15 मिनट की देर थी। गांधीजी एक छोटी-सी कोठरी में बैठे शाम का भोजन कर रहे थे। अहमदाबाद से मोटरपर आये हुए दो एक बड़े मिल मालिक पास में बैठे दीनतापूर्वक गांधीजी से बातें कर रहे थे। एसोसिएटेड प्रेस और कुछ प्रतिष्ठित पत्रों के दो चार प्रतिनिधि भी शिष्ट भाव-सा प्रदर्शित करते हुए उस वार्तालाप पर कान लगाये हुए थे!

मैं वहां जाकर एक ओर अपराधी भाव से चुपचाप बैठ गया। एक सुनिश्चित वज्रपात की आशंका से दिल जोरों से धक-धक कर रहा था। पर चाहे जो हो, आज मैं हार नहीं मानूंगा, यह मेरा भी ध्रुव निश्चय था।

दो चार मिनट बाद, उन लोगों से बातें बंद करके, फलाहार जारी रखते हुए गांधीजी ने मेरी ओर देखा—सहज, गंभीर मुद्रा से।

''क्यों...क्या हुआ है?''

''कुछ नहीं बापूजी'', मैंने भयभीत स्वर में जवाब दिया, ''मैं चलूंगा!''

''चलेगा?'' एक अविश्वासपूर्ण मुस्कुराहट के साथ वे बोल उठे।

''जी बापूजी, मैं चल सकता हूं।'' मेरी आवाज में दृढ़ता थी।

गांधीजी चकित से दिखायी दिये। ''कैसे चलेगा?'' मुसकुराते हुए कुतूहल भाव से उन्होंने पूछा, ''इस बुखार में, इतनी कमजोरी में?''

''नहीं बापूजी, मैं जरूर चलूंगा,'' अधीरतापूर्वक मैंने जवाब दिया, ''मैं किसी से पीछे नहीं रहूंगा—आप देख लीजिए न?''

''पर इससे तो शरीर और खराब हो जायेगा न,'' अब गंभीर होकर उन्होंने कहा, ''और फिर, यह तो पहले ही कहा था न, कि बीमार पड़ने पर वहीं छोड़ देना होगा!'' भेदभरी दृष्टि से उन्होंने मेरी ओर देखा।

''नहीं बापूजी, मुझे छोड़िये मत, मैं अच्छा हो जाऊंगा।'' मेरी आवाज कांप रही थी।

''अच्छा! तो चलो,'' बापूजी ने पिघल कर कहा—और फिर वहां बैठे सज्जनों से पूछा कि उनमें से कौन अपनी मोटर में मुझे अगले पड़ाव तक पहुंचा देंगे। अंत में प्रेस-प्रतिनिधियों की गाड़ी में ही मुझे भेज देना तय हुआ।

मुझे बिदा करते वक्त गांधीजी ने मुझे फटकार भी सुनायी—क्यों नहीं कल ही मैंने कह दिया, क्यों मैं आज तबियत खराब रहने पर भी सबेरे की यात्रा में शामिल हुआ; पहले कह देने पर वक्त पर इंतजाम हो जाता और बीमारी में चल कर इस तरह शरीर और खराब न किया जाता। पर इन सब बातों का मेरा एक ही उत्तर था—पीछे छोड़ दिये जाने का डर, यात्रा में भाग न ले सकने की भीषण लज्जा! गांधीजी ने आगे के लिए सावधान करके मुझे क्षमा कर दिया और यात्रा से मुझे वंचित न करने का आश्वासन भी दिया।

प्रेस-प्रतिनिधियों के साथ टैक्सी में मैं, दल के पहले ही, अगले पड़ाव के लिए रवाना हो गया। दल के पहले ही वहां पहुंच भी गया। वहां रात होते-होते जब गांधीजी पहुंचे तब वे पहले मुझे देखने आये। मुसकुराते हुए उन्होंने मेरी नब्ज देखी। बाद को मुझे एक जुलाब देने का आदेश हमारे ही दल के एक डॉक्टर-कंपाउंडर-नर्स-सेवक-मिश्रित सज्जन को देकर चले गये।

इस तरह दो दिन तक—कभी बैलगाड़ी से और कभी मोटर से—मैं एक-एक, दो-दो पड़ाव तक पहुंचाया जाता रहा और गांधीजी बराबर मुझे देखते रहे और उन्हीं के आदेशानुसार जुलाब, कुनैन, गरम पानी की मेरी चिकित्सा चलती रही। दो दिन बाद दल नडियाद नाम के नगर में पहुंचा। मैं पहले ही टैक्सी पर वहां पहुंचा दिया गया था। रात वहीं बीती। रेलवे स्टेशन होने के कारण अहमदाबाद और साबरमती से काफी लोग गांधीजी के दर्शनों के लिए वहां आये। हम लोगों के भी कुछ परिचित पहुंचे थे। गांधीजी ने अपने परिचित एक डॉक्टर से मेरे फेफड़ों की परीक्षा करायी क्योंकि खांसी अभी तक जारी थी।

डॉक्टर ने मुझे खतरे से खाली बताया तब अगली रात के पड़ाव आणंद तक मैं दूसरे दिन सबेरे रेल से भेज दिया गया। शनिवार का सारा दिन अकेले ही आणंद में बीता। वहां एक शिक्षा भवन था जो अपने सेवा-भाव के लिए बहुत मशहूर था। वहीं सारी टोली ठहरने वाली थी। मेरा भी वहीं प्रबंध हुआ था और उस संस्था की ओर से ही मेरा डॉक्टरी इलाज भी शुरू हो गया। दिन भर डॉक्टर की कड़वी दवाएं खाते-खाते मैं परेशान हो गया था। और इसलिए रात को गांधीजी के आने की प्रतीक्षा में मैंने कठिनाई से वह दिन बिताया। अंत में अंधेरा होते-होते गांधीजी की टोली आ पहुंची। मैं जहां ठहरा था वहां से कुछ ही दूर पर होने वाली हलचल ने मुझे उनके आने की सूचना दे दी।

बड़ी आतुरता के साथ मैं गांधीजी के आने की प्रतीक्षा करने लगा। मैं जानता था कि नियमानुसार वे आते ही सबसे पहले मुझे देखने आयेंगे।

पर इस बार गांधीजी की जगह चार स्वयंसेवक आ गये—एक 'स्ट्रेचर' लिए हुए। आते ही उन्होंने मुझे यह फरमान सुनाया कि गांधीजी ने अपने निकट ही उस संस्था के अस्पताली कमरे में—मेरे लिए व्यवस्था की है और मुझे लाने के लिए 'स्ट्रेचर' भेजा है। मैं अवाक् हो गया। अब तक बराबर मैं थोड़ा-बहुत चलता-फिरता था—पाखाने तो जाता ही था, जो कहीं-कहीं काफी दूर होता था। फिर थोड़ी ही दूर जाने के लिए आज स्ट्रेचर क्यों? मैं एक अज्ञात आशंका से कांप उठा। क्या डॉक्टर ने मेरे बारे में गांधीजी को कुछ डरा दिया है? क्या मेरा रोग कम होने के बजाय बढ़ता नजर आ रहा है? क्या अब मुझे यात्रा में साथ नहीं लिया जायेगा?

मैंने 'स्ट्रेचर' पर चलने से इनकार कर दिया। पर स्वयंसेवक राजी नहीं हुए। वे अपने साथ मुझे पैदल चल कर गांधीजी के पास नहीं जाने दे सकते थे। इस पर मैंने उन्हें गांधीजी के पास फिर वापस भेजा कि वे उन्हें बतायें कि मैं चलने लायक हूं—इसलिए क्यों मुझे जबर्दस्ती 'स्ट्रेचर' पर लिटा कर लज्जास्पद स्थिति में डाला जाए?

पर कुछ ही देर बाद स्वयंसेवक फिर 'स्ट्रेचर' लेकर वापस आ गये। गांधीजी को मेरी बात मंजूर नहीं थी। मेरी शक्ति का अनावश्यक ह्रास उनकी दृष्टि में हानिकर था। विवश होकर मुझे 'स्ट्रेचर' पर लेटकर वहां तक जाना पड़ा। लज्जा से मैं गड़ा जा रहा था—निकला था सेवा करने, और करा रहूं अपनी ही सेवा।

वह रविवार की शाम थी। गांधीजी साप्ताहिक मौन ले चुके थे—मुसकुरा कर उन्होंने अस्पताली कमरे में मेरा स्वागत किया और मेरी खाट के पास खड़े ही खड़े लिखकर मुझसे संक्षिप्त बातें कीं। डॉक्टरी इलाज के बारे में मेरी आपत्ति सुनकर वे खुश हुए और प्राकृतिक उपचार द्वारा मेरी चिकित्सा करने का भार उन्होंने स्वयं अपने ऊपर ले लिया। सोमवार को यात्रा स्थगित रहती थी—इसलिए अगले दिन गांधीजी को वहीं रहना था। यह तय हुआ कि पूरे एक दिन मेरी चिकित्सा करके वे उसका परिणाम देखेंगे और तब यह निश्चय किया जायेगा कि यात्रा के संबंध में मेरा भविष्य क्या हो। भय और आशंका के डोले में झूलते हुए मैंने रविवार की रात और पूरा सोमवार बिताया।

मंगलवार का सबेरा हुआ। छह बजे ही गांधीजी और उनकी टोली के लोग अपनी यात्रा पर आगे बढ़ जायेंगे। जाने के पहले ही वे मुझे आकर देखेंगे और तब मेरे भाग्य का फैसला करेंगे—कि मुझे अभी भी अपने साथ लेते चलेंगे, या वहीं पर सड़ने के लिए छोड़ जायेंगे! वैसे ही मैं ऐन मौके पर बीमार पड़ जाने की लज्जा से गड़ा जा रहा था; कहीं अब वे मुझे यहीं छोड़कर चल दें और सारा दल आगे जाकर गिरफ्तार हो जाये, और मैं मंझधार में ही पड़ा-पड़ा डुबकियां लूं—इस भय से मैं और भी व्याकुल हो रहा था। धड़कते हुए हृदय से अपने बिछौने पर पड़ा-पड़ा मैं उनके आने की प्रतीक्षा करने लगा।

करीब 10 या 15 मिनट पहले, कूच के लिए बिलकुल तैयार होकर, बापूजी आये। मैंने उठने की कोशिश की, पर उन्होंने हाथ के इशारे से रोक दिया और तब बड़ी गंभीरता के साथ उन्होंने कहना शुरू किया—"तुम्हें चेचक हुई है—डॉक्टर भी यही कहते हैं, और मैं भी यही देख रहा हूं। बोलो, अब क्या चाहते हो?"

मैं भला क्या चाह सकता था? जो बापूजी का आदेश था!

"घर जाना चाहते हो तो जा सकते हो।" अत्यन्त निरपेक्ष भाव से गांधीजी ने कहा। मैं जानता था कि घर न लौटने की हम प्रतिज्ञा ले चुके हैं और दो एक ही दिन पहले एक दांडी यात्री अपनी मां की सख्त बीमारी की खबर पाकर भी उनके पास जाने की इजाजत नहीं पा सके थे। मुझसे घर जाने की बात जो कही जा रही थी, उसका सिवा इसके और क्या मतलब हो सकता था कि गांधीजी मेरी परीक्षा ले रहे थे—अगर मेरे दिल में कोई कमजोरी हो तो वे मुझे अपने दल से निकाल बाहर करें। मैंने दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया—"यह तो प्रश्न ही नहीं पैदा होता बापूजी!"

गांधीजी के चेहरे की सख्त रेखाओं का तनाव तो शायद शिथिल नहीं हुआ पर स्वर में कुछ मुलायमियत आ गयी थी। बोले—"आश्रम जाना चाहते हो?" मैंने इस बार भी दृढ़ता के साथ सिर हिला दिया—"नहीं।"

हर तरह से मुझे दृढ़ देखकर गांधीजी के चेहरे की कठोर रेखाएं सहसा ढीली हो गयीं और एक आनंदपूर्ण हलकी मुसकुराहट उनके होठों पर खेल गयी। "तब ठीक है। तुम बहादुर हो।" गांधीजी ने कुछ आवेश के साथ कहना शुरू किया—"तुम्हें यहां कोई तकलीफ नहीं होगी। तुम्हारा सारा इंतजाम मैंने यहां कर दिया है। मैंने चिकित्सा के बारे में भी पूरी हिदायतें दे दी हैं और बराबर चिट्ठी से देता रहूंगा। तीन दिन में तुम्हारी माता सूख जायेगी और उसके कुछ बाद, ताकत आ जाने पर, तुम हमारे साथ शामिल हो जाना।" और मेरे सिर पर हाथ फेर कर मुसकुराते हुए गांधीजी मुझसे बिदा हो गये।

गांधीजी कह गये थे कि तीन दिन में उनकी बतायी चिकित्सा से मेरी चेचक अच्छी हो जायेगी। हुआ भी वैसा ही। पर चेचक अच्छी हो जाने के बाद भी कुछ वक्त तक मुझे कमजोरी की हालत में उसी जगह पर रहना पड़ा। जब मैं कुछ-कुछ चलने लायक हो गया तब मैंने बापू को पत्र लिखकर फिर यात्रा में सम्मिलित होने की अनुमति मांगी और बापू ने मुझे अपने अगले पड़ाव के

शहर भरूच में शामिल हो जाने के लिए बुलाया। रेल से मैं आणंद, फिर वहां से भरूच पहुंचा और वहां दिन भर बापू के पास बैठा रहा। किन्तु बापू ने मुझे तब भी अशक्त बताया और कुछ दिन और विश्राम करने का आदेश दिया। कुछ दिन और मुझे वहीं ठहरना पड़ा। यहां एक और दांडी यात्री भी बीमारी के कारण रोक दिये गये थे। हम दोनों कुछ दिन में जब पूरी तरह स्वस्थ हो गये तो मैंने बापू को फिर पत्र लिखकर यात्रा में शामिल होने की अनुमति मांगी।

बापू का आदेश पा जब हम सूरत पहुंचे तब तक बापू और उनके साथी वहां तक पहुंच चुके थे। शाम का वक्त था। बापू उस समय बहुत ही व्यस्त थे। जहां तक मुझे याद है उस शाम की प्रार्थना में बापू हमारे साथ नहीं थे। अहमदाबाद से चलने के बाद दांडी के रास्ते में सूरत ही सबसे बड़ा शहर पड़ता था। गुजरात प्रांत में भी अहमदाबाद के बाद सूरत का ही दूसरा स्थान है। रात को तापती नदी के किनारे लंबे चौड़े बालुका तट पर विराट सभा हुई, जिसके बीचोबीच एक ऊंचा मंच बापू के लिए तैयार किया था। जहां तक मुझे स्मरण है, लाउडस्पीकर की व्यवस्था की गयी थी, पर उसने काम नहीं दिया। बापू कुछ भी बोल नहीं सके, क्योंकि उतनी बड़ी सभा के लिए उनकी आवाज एकदम अपर्याप्त थी। दो-एक बार उन्होंने बोलने की कोशिश की, पर सुन सकने वालों की संख्या सैकड़ों गुना अधिक थी, और जो नहीं सुन सकते थे, वे सुनने वालों को सुनने देने के लिए तैयार नहीं थे। अंत में हार कर बापू ने अपनी जगह पर खड़े हो घूम-घूम कर चारों ओर के लोगों को हाथ जोड़कर अपना दर्शन दिया, और फिर कुर्सी पर बैठ गये।

सभा क्या थी, जनता का समुद्र। तब तक मैंने अपने जीवन में किसी बड़े से बड़े नगर में इतना विराट जन-समूह नहीं देखा था। औरों ने देखा था, इसमें संदेह है। सुना था, सूरत शहर की आबादी ही एक लाख से अधिक नहीं थी, पर उस सभा में दो लाख के करीब नर-नारी उपस्थित थे। दूर-दूर के गांवों ही नहीं, शहरों तक के देहाती और नागरिक महात्मा का दर्शन करने आये थे। बम्बई और अहमदाबाद के सेठ और साहूकार स्पेशल ट्रेनों में इस अवसर पर महात्माजी का दर्शन करने सूरत आये थे। दांडी सूरत जिले में ही था, और सूरत से चलकर तीन-चार दिन में ही हम लोग वहां पहुंच जाने वाले थे।

महादेव भाई भी इस अवसर पर सूरत आये हुए थे। बापू के हार मानकर बैठ जाने के बाद उन्होंने ही उनकी ओर से तार-स्वर में भाषण दिया और अंत में गुजरात प्रांतीय कांग्रेस कमेटी के लिए धन की अपील की।

धन की वर्षा होने लगी। किसी महिला ने आकर बापू के चरणों पर अपने कर्णभूषण रख दिये, किसी ने गले का हार, किसी ने बाजू-बंद, कंगन, और कोई आभूषणं किसी भद्र पुरुष ने अपनी रिस्टवाच खोलकर दे दी, किसी ने फाउंटेनपेन, किसी ने अंगूठी। उस विराट जन-समुद्र में कितने ही नर-नारी अपनी-अपनी जगहों से उठकर मंच की ओर आते दिखायी दिये—सभी कुछ न कुछ देने के लिए। कीमती चीजों के साथ-साथ नोटों और रुपयों की भी उसी तरह ढेरी लगने लगी।

एक सेठ ने एक हजार एक रुपये की थैली का वादा किया, दूसरे ने दो हजार एक की थैली का। सेठों और महाजनों के बीच होड़-सी लग गयी। महादेव भाई ने विनोदपूर्वक सूरत के एक सेठ का नाम लेकर अहमदाबाद के सेठों को ललकारा, अहमदाबाद के किसी सेठ का वादा पाकर बंबई के सेठों को चुनौती दी। बाल-सुलभ कुतूहल से बापू यह सब देख रहे थे और हँस रहे थे। महादेव भाई भी हँस-हँस कर अपना बनियापन दिखा रहे थे।

एक और तरकीब भी महादेव भाई ने शुरू की। जो भी कीमती चीजें दान-स्वरूप पायी गयी थीं, उनमें से एक-एक को उन्होंने वहीं नीलाम पर चढ़ाना शुरू किया। 'महात्माजी को मिली हुई यह अंगूठी एक यादगार होगी,' वे कहते, 'इसे कौन खरीदेगा?'' अंगूठी बीस-पच्चीस रुपये से ज्यादा की न होगी, पर एक सेठ ने उसका दाम 101 रुपये लगाया।

इस अंगूठी का दाम 101 रुपया...इस अंगूठी का दाम 101 रुपया एक, दो...महादेव भाई लोगों का जोश बढ़ाते हुए कह रहे हैं, और दूसरा सेठ उठकर कहता है—'151 रुपया!'

और इस तरह एक-एक चीज पर दूने, चौगुने, दस गुने, बीस गुने दाम नीलाम में आये। महादेव भाई ने उस रात इस कोष को कुबेर का कोष बना दिया होता अगर बापू बैठे-बैठे थक कर चूर-चूर न हो गये होते। आधी रात कब की बीत चुकी थी, यह सिलसिला खत्म होता ही नजर नहीं आता था।

अंत में बापू ने महादेव भाई के *'लालच'* पर अंकुश लगाया और कहा कि *''मेरी जान लेना चाहो तो अपना बनियापन सारी रात जारी रखो।''*

अंत में आती हुई इस लक्ष्मी का तिरस्कार कर महादेव भाई को सभा-भंग करने के लिए मजबूर होना पड़ा। हम लोगों को बिछौने पर पड़ते-पड़ते दो तो जरूर ही बजे होंगे उस रात।

दूसरे दिन सबेरे का दृश्य भी रात के ही दृश्य के समान अभूतपूर्व था। प्रातःकालीन यात्रा के समय हमें शहर के बीच से होकर गुजरना पड़ा। मालूम पड़ता था कि सारी रात सूरत नगर में जागरण मनाया गया है, एकदम सबेरे का वक्त था। शहरों के अधिकांश लोग बिछौनों पर पड़े रहते हैं। किन्तु जिन सड़कों पर होकर हम शहर के बीच से गुजर रहे थे, उनमें हमारे जाने का

रास्ता इतनी मुश्किल से हो पा रहा था कि अगर कोई गिर जाता तो उसके फिर उठने की कोई आशा नहीं थी। दोनों ओर ऊंचे-ऊंचे मकानों की कतारें। छज्जों, बरामदों, खिड़कियों, दरवाजों और छतों पर औरतें और बच्चे इस तरह लदे हुए कि हर क्षण उनके टूट कर गिर जाने का डर मालूम हो रहा था। और इधर सड़क इस तरह नरमुंडों से ठसाठस भरी थी कि स्वयं सेवकों की तीन-तीन कतारें हमारे दोनों ओर हमारे साथ आगे बढ़ती थीं—एक की बांह में दूसरे की बांह की शृंखला बनाये।

मकानों की सजावट भी ऐसी थी कि जो तभी की जा सकती है जब हर मकान में रहने वाले हर प्राणी ने उसमें दिल से सहयोग दिया हो, अपने हृदय का पूरा आनंद व्यक्त करना चाहा हो।

अशोक और आम के पत्तों और सतरंगी झंडियों के बंदनवारों से शून्य तो शायद ही कोई मकान हो और तरह-तरह के फूलों की सजावट अलग। हर घर से फूलों की जो वर्षा बापू से लेकर टुकड़ी के आखिरी व्यक्ति तक हो रही थी, उससे आश्चर्य होता था कि इतने फूल आखिर एक दिन में कहां से लाये जा सके। गुलाब की कोमल पंखुड़ियों को अपने कपड़ों पर से झाड़ते-झाड़ते और अपने पांवों के तले कुचलते हम लोग फूलों के प्रति अनासक्त ही नहीं, पूरे बेरहम हो गये थे।

अहमदाबाद की भीड़ में गर्द के कारण बापू को और हम लोगों को जो तकलीफ हुई थी और उसके कारण हममें से कई के स्वास्थ्य पर जो बुरा असर पड़ा था, उससे हमारी रक्षा करने के लिए यहां की सड़कों पर पानी का इतना छिड़काव हुआ था कि अब पांवों के फिसलने का डर बहुत अधिक था। इस प्रकार की दुर्घटनाओं से हमारी रक्षा करने में इस अजस्र पुष्प-वर्षा ने बहुत बड़ी मदद की। करीब-करीब हम फूलों की गद्दियों पर ही चल रहे थे। ❑

कविता

हे महाक्रोध तुम जागो!

❑ डॉ. लक्ष्मी निधि

जन-जन का यह क्रोध बिखर कर, क्रोध नहीं रह जाता,
मार-काट बन आपस में ही, व्यर्थ सदा हो जाता।
यही क्रोध जब बने समूह का, महाज्वार बन जाये,
महाक्रांति उसकी लहरों पर, जन-जन में लहराये।
नव प्रभात से बरस पड़ेगी, घर-घर नयी जवानी,
चिता शहीदों की फाड़कर, निकल पड़े कुर्बानी।
राजनीति, अब नेताओं की, बनी खेत-खलिहान,
अपराधी को संरक्षण दे, बढ़ा रहे वे मान।
आपस के सब भेदभाव से, जन-शक्ति मर जाती,
बिना एकता के जनता भी, लड़ने से डर जाती।
नेताओं के ऊपर हो जब, क्रोध-घृणा की बारिश,
नहीं मिलेगा कभी उसे तब, जनता का व आशीष।
जिस आशीष के बल पर वह, सदा नाचता आया,
झोपड़ों को तो भूल गया पर, अपना महल बनाया।
कौन है ऐसा पाप जिसे, नेता ने नहीं किया है?
कौन है ऐसा जहर जिसे, जनता ने नहीं पिया है।
इसीलिए तो हम कहते हैं, महाक्रोध! तुम जागो;
भारत के भाग्य विधाता, जागो, निद्रा अपनी त्यागो।

लाये नया विहान

वीर व्रती, संकल्पपूर्ण नर, होते नहीं निराश,
कदम-कदम पर मंजिल उसकी, सांस-सांस में आस।
जब तक सांस चलेगी उसकी, कदम नहीं रुक पाता,
महाकाल के भी समक्ष वह, मस्तक नहीं झुकाता।
जीवन है संग्राम, लड़ेंगे, कभी न माने हार,
ऐसे नरसिंहों की होती, दुनिया में जयकार।
आत्मबली के लिए विश्व में, कुछ भी नहीं असम्भव,
मन में हो विश्वास अगर तो, सब हो जाता सम्भव।
भयाक्रान्त नर भय के मारे, मुर्दा बन जाता है,
इच्छा-शक्ति विहीन व्यथित क्या मंजिल पा सकता है?
दिशाहीन, बन दीन, व्यथा के अश्रु नहीं बहाओ,
अग्निपथी बन, क्रांतिदूत हो, अपना शौर्य दिखाओ।
मुर्दे ही कंधों पर चढ़कर, श्मशान जाते हैं,
जिन्दा हैं जो लोग, लाश को कंधों पर लाते हैं।
जिन्दा आदमी ही जमीन पर, अपना निशान बनाते,
मुर्दा आदमी तो मरते, ही माटी में मिल जाते।
हर शहीद की माटी बनती, नवयुग का आह्वान,
अमर पूत है वही सदा जो, लाये नया विहान।

24 अप्रैल : 'दिनकर' पुण्य-तिथि

राष्ट्रकवि दिनकर की साहित्य-साधना के विविध रूप

❑ श्रीरंजन सूरिदेव

कविवर दिनकर की साहित्य-साधना के रूप-वैविध्य की महिमा, सर्वव्यापिनी है। विशेषतः उनकी काव्य-प्रतिभा सीमान्त-पारगामी स्तर पर मुखरित है। उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से युगक्रांति का संदेश दिया है। उनकी काव्य-कृतियां शताब्द्धि से भी अधिक है। यह वक्तव्य सही नहीं होगा कि उनका काव्य छायावाद का प्रतिलोम है। परंतु इसमें संदेह नहीं कि हिन्दी काव्य-जगत पर छाये छायावादी कुहासे को छांटने वाली शक्तियों में दिनकर की प्रवाहमयी ओजस्विनी कविता का ऐतिहासिक महत्त्व है। वह छायावादोत्तर काल के उन्हीं के शब्दों में 'छायावाद की ठीक पीठ पर आये' कवियों में पाक्तेय है। सच पूछिये तो, लाक्षणिक और अस्वाभाविक भाषा-शैली में निबद्ध छायावादी कविताओं से उनका कविहृदय ऊब चुका था। उन्हें द्विवेदीयुगीन काव्यभाषा की स्पष्टता की अपेक्षा थी, साथ ही वास्तविक संस्पर्श और सहजता की भी।

आरंभ में, दिनकर ने कतिपय छायावादी कविताएं लिखीं, परंतु जैसे-जैसे वह अपने स्वर से स्वयं परिचित होते गये, अपनी काव्यानुभूति पर ही अपनी कविता को आधृत करने का आत्मविश्वास उनमें बढ़ता गया। दिनकर वस्तुतः द्विवेदीयुगीन और छायावादी काव्य-पद्धतियों के बीच सेतु कवि बन गये थे। उनके ही शब्दों में, 'पंत के सपने हमारे हाथ में आकर इतने वायवीय नहीं रहे, जितने कि वे छायावाद-काल में थे। किन्तु द्विवेदीयुगीन अभिव्यक्ति की प्रांजलता और स्वच्छन्दता की नई विरासत हमें आपसे प्राप्त हो गयी।' इस मंतव्य के प्रसंग में दिनकरजी की 'रसवंती', 'द्वन्द्वगीत' आदि काव्यकृतियां संदर्भित करने योग्य हैं।

दिनकर बच्चन की तरह एकांत व्यक्तिवादी नहीं, वरन् वह मूलतः सामाजिक चेतना के मुखर प्रवक्ता थे। दिनकर के प्रथम तीन काव्यसंग्रह 'रेणुका' (1935 ई.), 'हुंकार' (1938 ई.) और 'रसवंती' (1939 ई.) उनके आरम्भिक आत्ममंथन-युग की काव्य-रचनाएं हैं। रेणुका में अतीत के गौरव के प्रति कवि का सहज आग्रह और आकर्षण परिलक्षित होता है। साथ ही, वर्तमान परिवेश की वस्तुस्थिति से त्रस्त मन की व्यथा-वेदना का भी परिचय प्राप्त होता है। 'हुंकार' में तो कवि अतीत के गौरव-गान की अपेक्षा वर्तमान दैन्य के प्रति आक्रोश-प्रदर्शन की ओर अधिक उन्मुख हुआ है। 'रसवंती' में कवि के सौन्दर्यनुराग की भावना काव्यमयी हो गयी है। 'सामधेनी' (1947 ई.) में दिनकर की सामाजिक चेतना स्वदेश और परिवेश की परिधि से आगे बढ़कर विश्व-वेदना का अनुभव करती-कराती जान पड़ती है। इसमें कवि के स्वर का वेग और ओज नये शिखर पर पहुंच गया है। उसके बाद 'नीलकुसुम' (1953 ई.) में हमें कवि के एक नये रूप के दर्शन होते हैं, यद्यपि इतने नये नहीं, जितने नयेपन का बोध स्वयं कवि को था। यहां वह काव्यात्मक प्रयोगशीलता के प्रति अधिक आस्थावान हैं।

उक्त मुक्तक काव्यों के अतिरिक्त दिनकर ने अनेक प्रबंध-काव्यों की भी रचना की है, जिनमें 'कुरुक्षेत्र' (1946 ई.), 'रश्मिरथी' (1952 ई.) और 'उर्वशी' (1961 ई.) प्रमुख हैं। 'कुरुक्षेत्र' में महाभारत के शांतिपर्व के मूल कथानक का प्रतिमान लेकर उन्होंने युद्ध और शांति के विराट् और गंभीर एवं महत्त्वपूर्ण विषय पर अपने विचार भीष्म और युधिष्ठिर के संलाप के रूप में आवर्जक काव्यभाषा में उपन्यस्त किया है। 'रश्मिरथी' में भी महाभारत की ही कर्ण-कुंती की कथा को प्रभावकारी ढंग से काव्यायित किया गया है। 'कुरुक्षेत्र' के बाद उनके नवीनतम काव्य-रूपक 'उर्वशी' में फिर हमें विचार-तत्त्व की प्रमुखता प्राप्त होती है। साहसपूर्वक गांधीवादी अहिंसा की आलोचना करने वाले 'कुरुक्षेत्र' को हिन्दी-जगत में यथेष्ट लोकादर प्राप्त हुआ। 'उर्वशी', जिसे स्वयं कवि ने 'कामाध्यात्म' की उपाधि प्रदान की है, एक नये शिखर का स्पर्श करती है।

दिनकर आधुनिक कवियों की प्रथम पंक्ति के कवि हैं। यह निश्चयपूर्वक उद्घोषित किया जा सकता है। रस, भाव और वैचारिकी की उनके काव्यों में कमी नहीं है, भले ही दार्शनिक गंभीरता कम हो। उनकी काव्य-शैली में प्रसाद गुण का प्राचुर्य है, प्रवाह, ओज और अनुभूति की तीव्रता है, साथ ही सच्ची संवेदना भी। उनके विचारों में मौलिकता भी है। उनके काव्यवर्णित चित्र सर्वथा स्पष्ट होने से वे ततोऽधिक जनग्राह्य या सम्प्रेषणशील हैं और साधारणीकरण के तत्त्व भी कम नहीं हैं। उनकी कविताओं का यह विशिष्ट गुण है। उनकी अभिव्यक्ति की तीव्रता में चिन्तन-मनन की प्रवृत्ति स्पष्ट दिखायी पड़ती है। उनका जीवन-दर्शन उनका अपना जीवन-दर्शन है, जो उनकी काव्यानुभूति से अनुप्राणित तथा उनके अपने विवेक से अनुप्राणित, परिणामतः निरंतर परिवर्तनशील है।

दिनकर प्रगतिवादी, जनवादी-मानववादी आदि-आदि रहे हैं। 'रसवंती' की भूमिका में

वह यह कहने में संकोच नहीं करते कि 'प्रगति शब्द में जो नया अर्थ ठूंसा गया है, उसके फलस्वरूप हल और फावड़े कविता का सर्वोच्च विषय सिद्ध किये जा रहे हैं और वातावरण ऐसा बनता जा रहा है कि जीवन की गहराइयों में उतरने वाले कवि सिर उठा नहीं सके।' गांधीवाद और अहिंसा के हामी होते हुए भी 'कुरुक्षेत्र' में वह यह कहते नहीं हिचकते कि :

'कौन केवल आत्मबल से जूझकर,
जीत सकता देह का संग्राम है।
पाशविकता खड्ग जो लेती उठा,
आत्मबल का एक वश चलता नहीं
योगियों की शक्ति से संसार में,
हारता लेकिन नहीं समुदाय है।'

दिनकर की प्रगतिशीलता एक ऐसी सामाजिक चेतना का परिणाम है, जो मूलतः भारतीय है और वह राष्ट्रीय भावना से परिचालित है। उन्होंने राजनीतिक मान्यताओं को राजनीतिक मान्यताएं होने के कारण अपने काव्य का विषय नहीं बनाया और न कभी राजनीतिक लक्ष्य-सिद्धि को काव्य का उद्देश्य माना, फिर भी उन्होंने निःसंकोच राजनीतिक विषयों को उठाया है और उनका प्रतिपादन किया है; क्योंकि वह काव्यानुभूति की व्यापकता स्वीकार करते हैं, राजनीतिक मान्यताओं और नीतियों को सहज ही उनकी काव्यानुभूतियों में अनुस्यूत हो गया है।

दिनकर की गद्य-कृतियों में उनकी नैबन्धिक प्रतिभा की विलक्षणता के दर्शन होते हैं। उनका महाग्रंथ 'संस्कृति के चार अध्याय' (1956 ई.), जिसमें उन्होंने प्रधानतया शोध और अनुशीलन के आधार पर मानव-सभ्यता के इतिहास का चार अध्यायों या पड़ावों में बांटकर अध्ययन किया है। इसके अतिरिक्त दिनकर के समीक्षात्मक तथा विविध निबंधों के संग्रह हैं। उनकी प्रसिद्ध आलोचनात्मक नैबन्धिक कृतियां हैं—'मिट्टी की ओर' (1946 ई.), 'काव्य की भूमिका' (1958 ई.), 'पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण' (1958 ई.), 'शुद्ध कविता की खोज' (1966 ई.) एवं 'अर्द्धनारीश्वर'।

'अर्द्धनारीश्वर' के निबंधों में बौद्धिक चिन्तन तथा विश्लेषण के तत्त्व अंकित हैं। जो पाठक कविताओं में अभिरुचि लेते हैं, वे दिनकर के निबंधों, खासकर 'अर्द्धनारीश्वर' के निबंधों में अधिक रमेंगे और रीझेंगे भी। वह 'अर्द्धनारीश्वर' के 'आमुख' में लिखते हैं—'नहीं चाहने पर भी लेख मैं थोड़े-बहुत लिखता ही रहता हूं, यद्यपि कविताओं की तरह सभी लेखों पर मेरी ममता नहीं रहती। तब भी जो लेख मुझे या उनलोगों को पसंद आ जाते हैं, जिनके साथ मैं साहित्य पर विचार-विनिमय करता हूं, उन्हें मंजूषा में सजा देने की इच्छा जरूर जग पड़ती है। वर्तमान संग्रह भी मेरी इसी प्रवृत्ति का फल है। इस संग्रह में ऐसे भी निबंध हैं, जो मनबहलाव में लिखे जाने के कारण कविता की चौहद्दी के पास पड़ते हैं और कुछ ऐसे भी हैं, जिनमें बौद्धिक चिन्तन या विश्लेषण प्रधान है। इसीलिए इस संग्रह का नाम 'अर्द्धनारीश्वर' रखा है, यद्यपि इसमें अनुपाततः नरत्व अधिक और नारीत्व कम है। किन्तु, यही अनुपात मेरी कविता में भी रहा है, अतएव आशा करनी चाहिए कि जिन्हें मेरी कविताएं पसंद हैं, उन्हें ये निबंध भी कुछ आनंद दे सकेंगे।' प्रस्तुत 'आमुख' को पढ़कर, संकलित निबंधों के बारे में सहज ही यह धारणा बनती है कि नहीं चाहने पर भी जो कवि इतने अच्छे ललित निबंध लिख सका है, वह अद्‌भुत है। 'अर्द्धनारीश्वर' के निबंधों की भाषा गद्यात्मक होते हुए भी उनमें प्रच्छन्न पद्यात्मकता है, जिसमें युगबोधता मुखरित हुई है एवं प्रयोग प्रौढ़ कवि की अकुंठ लेखनी लोच और लचीलेपन के कारण अभिव्यक्ति की अपूर्व मोहकता आ गयी है। किसी विषय पर विचारों की विविधता और प्रामाणिकता के साथ उनका एकत्र गुम्फन ही निबंध है। 'अर्द्धनारीश्वर' के वैयक्तिक निबंध अपने समय के प्रतिनिधि निबंध हैं।

वैयक्तिक निबंध गद्य साहित्य का एक मनोहारी रचना-विधा है। 'अर्द्धनारीश्वर' के निबंध, अपने लालित्य के कारण रसोद्रेक और सरसता का युगपत उत्पन्न करते हैं। दिनकर की नैबन्धिक दृष्टि नितांत बुद्धिमूलक न होकर हृदयमूलक अधिक है। निबंधकार ने अपनी प्रकृति के अनुकूल स्वोद्‌भावित विषय के विवेचन-क्रम में नाधिक गंभीरता के साथ ही विनोदशीलता से भी काम लिया है। दिनकर ने 'अर्द्धनारीश्वर' के निबंधों द्वारा आत्मान्वेषण का सफल प्रयास किया है। व्यक्तिगत निबंध के संदर्भ में दिनकर का मंतव्य ज्ञातव्य है कि 'व्यक्तिगत निबंध श्रद्धाविद्ध ऋतु हृदय का भक्तिमय निष्छल उद्‌गार है। आत्मान्वेषण ललित निबंध की सर्वातिशायी विशेषता है। 'खड्ग और वीणा', 'मंदिर और राजभवन', 'कर्म और वाणी', 'चालीस की उम्र', 'हड्डी की चिराग' आदि निबंधों में लेखक ने अपने अहं का ही निष्कपट उद्‌भावन किया है, वैयक्तिक या ललित निबंध का उल्लेख्य गुण है। पाठक ज्यों-ज्यों लेखक की आत्म-स्वीकृतियों को सहज ही आत्मसात् करता जाता है, त्यों-त्यों लेखकीय व्यक्तित्व के अनेक आवृत्ति-अनावृत परतें उसके समक्ष अनायास उभरती जाती हैं। फलतः लेखक के व्यक्तित्व के माध्यम द्वारा पाठक का एक ही व्यक्ति से परिचय नहीं होता, अपितु सम्पूर्ण मानव-व्यक्तित्व से हो जाता है। इसलिए, यह कहना सही होगा कि व्यक्तिगत निबंध के रचयिता की रचना प्रक्रिया में संपूर्ण विश्व अंतर्निहित हो जाता है।

चालीस के दशक के शुरू होते-न-होते व्यक्तिगत निबंधों के प्रति जिन लेखकों की आग्रहशीलता तीव्रता से बनी रही, उन अच्छे निबंधकारों में दिनकर का नाम शिखरस्थ है। अभिव्यंजना शैली के सिद्धहस्त शिल्पी दिनकर ने अपनी निबंध-रचनाओं द्वारा हिन्दी के व्यक्तिगत निबंध साहित्य को कभी बासी न पड़ने वाली अभिरामता पर्याप्त समृद्ध किया है।

निष्कर्ष यह कि राष्ट्रकवि दिनकर जहां एक कलामुखर वरेण्य कवि हैं, वहीं वह नैबन्धिक प्रतिभा से प्रदीप्त श्रेष्ठ गद्यकार भी हैं। यही कारण है कि उनके पद्यगन्धि निबंधों में आलोचक या भाष्यकार के गद्य की जटिलता की अपेक्षा गद्यकवि के सहज-सुलभ भाषा-लालित्य की आस्वाद्य मधुरता का पूर्ण परिपाक उपलब्ध होता है। ❑

लघु-कथा

नदियां और समुद्र

एक ऋषि थे, जिसका शिष्य तीर्थाटन करके बहुत दिनों के बाद वापस आया।

सन्ध्या समय हवन-कर्म से निवृत्त होकर जब गुरु और शिष्य, जरा आराम से धूनी के आर-पार बैठे तब गुरु ने पूछा, 'बेटा इस लम्बी यात्रा में तुमने सबसे बड़ी कौन बात देखी?' शिष्य ने कुछ सोचकर कहा, 'सबसे बड़ी बात तो मुझे यह लगी कि देश की सारी नदियां बेतहाशा समुद्र की ओर भागी जा रही हैं।'

गुरु बोले, 'अरे इसमें कौन-सी बड़ी बात है?'

शिष्य ने निवेदन किया, 'बड़ी बात तो है महाराज। अब यही देखिये कि जितनी नदियां हैं, वे सब-की-सब श्रद्धेय हैं। उनका रूप मनोहर और जल सुस्वादु है और उनके किनारों पर इतने फूल खिलते हैं, इतने पक्षी चहचहाते हैं कि आदमी का जी वहां से हटने को नहीं चाहता। मगर नदियां हैं कि एक क्षण कहीं रुकने का नाम नहीं लेती, वे भागी जा रही हैं। और किसकी तरफ को महाराज? उस समुद्र की तरफ को, जिसका रंग नीला और सारा शरीर लवण से तिक्त है।' ऋषि ने कहा, 'बेटा समुद्र नर और नदियां नारी हैं, नारियों का स्वभाव है कि वे अपने प्रेमी का चुनाव, रूप नहीं, गुण देखकर करती हैं। समुद्र नीला और खारा भले ही हो, मगर कुछ गंभीर है और बड़ा मर्यादावान भी। इसलिए वह न तो कभी घटता है और न इसमें बाढ़ ही आती है। ऐसे सुगम्य मर्यादा-पुरुषोत्तम का आकर्षण भला कौन नारी रोक सकती है।'

–रामधारी सिंह 'दिनकर'

खादी

गांधी, खादी और सरकार

❑ **अशोक शरण**

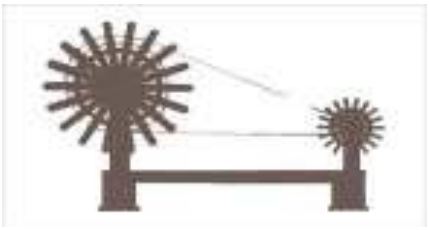

''यह कितनी अजीब बात है कि खादी ग्रामोद्योग आयोग एक मीटर भी खादी का कपड़ा नहीं बनाता और पूरे देश में ढिंढोरा पीट रहा है कि जैसे वही गांव-गांव जाकर कत्तिन-बुनकरों से कपड़ा बनवा रहा है। अत्यधिक वेतन पाने वाले इसके कर्मचारी तो अपनी कुर्सी से हिलते भी नहीं, अधिकारी वातानुकूलित कमरों से बाहर निकलते नहीं और आयोग कभी फैशन के नाम पर, कभी भवन के उद्घाटन के नाम पर, कभी चरखे को एयरपोर्ट पर तो कभी कनाट प्लेस, दिल्ली में लगा कर तो कभी कैलेंडर और डायरी से गांधी को हटाकर तो कभी जोड़कर खोखली वाहवाही बटोर रहा है।''

गांधीजी के लिए खादी एक वस्त्र नहीं, विचार था। एक महासाम्राज्य को परास्त करने का, ग्राम स्वावलंबन का, सामाजिक परिवर्तन का, अर्थात गांधीजी इसके माध्यम से आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक परिवर्तन चाहते थे। जो पहने सो काते, जो काते सो पहने—गांधी के इस सूत्र ने घर-घर चरखे का प्रसार किया और कपास की खपत छोटे-छोटे औजारों के माध्यम से विकेन्द्रित रूप में होने लगी। आम लोग चरखे के माध्यम से खादी के श्रमिक बने। इसी श्रम शक्ति ने उस समय के समाज को स्वतंत्रता आंदोलन के उद्वेलित किया। चरखे के माध्यम से खादी व्यक्तिगत 'स्वराज' का प्रतीक बना। हर नागरिक के हाथ में स्वावलंबन पाने का एक तंत्र तथा स्वतंत्रता प्राप्त करने का एक औजार और विचार भी। खादी तत्कालीन भारत में राजनैतिक उद्देश्यों के पूर्ति का भी कारण बनी। उपनिवेशियों के षड्यंत्रों द्वारा कुचले गये इस प्राथमिक ग्रामोद्योग को पुनर्जीवित करने हेतु बापू को भगीरथ प्रयत्न करने पड़े।

गांधीजी के लिए चरखा आजादी की लड़ाई में एक तलवार बना, असहायों के आंदोलन का माध्यम बना और अहिंसा का सशक्त हथियार बना। साथ ही बापू के समझ के अनुसार खादी को भारत की आर्थिक आजादी की भी कुंजी बनाना था। 1929 में बापूजी ने एक चरखा अभिकल्प प्रतियोगिता घोषित की। इसके लिए एक लाख का पुरस्कार भी घोषित किया। रुपये 150/- से कम कीमत वाला, प्रतिवर्ष 5-7 रुपये से कम मरम्मत खर्च वाला और पूनी बनाने की सुविधा वाला यह सुवाह्य (पोर्टेबल) और पैडल द्वारा भी चलाने लायक चरखे की उत्पादकता करीब पांच गुना होना था। दुर्भाग्यवश बापूजी के जीवनकाल में इस चुनौती का उत्तर कोई नहीं दे पाया।

गांधीजी ने सुझाव दिया कि सभी उत्पादक संस्थाएं स्वावलंबी बनें और अपने-अपने क्षेत्र के लिए पर्याप्त खादी बनायें। साथ ही स्थानीय बाजार भी ढूंढ़ा जाये। कुल मिलाकर स्थानीय स्तर के खादी संस्थान अपने को स्वायत्त बनायें और स्वावलंबी होवें, यहां तक कि केन्द्रीय संगठन को नजरअंदाज कर आगे बढ़ें। मुख्य रूप से खादी को पूर्ण रोजगार का साधन न मानकर

अतिरिक्त कमाई की एक संभावना के रूप में माना जाये। देश आजाद होने के बाद खादी के कार्य में तब तक कोई रुकावट नहीं आयी जब तक गांधीजी के साथ के लोग खादी के कार्य में लगे रहे और सरकार में भी स्वतंत्रता आंदोलन के समय के लोग बने रहे। अस्सी के दशक के बाद खादी क नीतियों में काफी परिवर्तन हुए, जो इसके विकास में आशातीत सफलता नहीं दिला सके। दस वर्ष की मनमोहन सरकार में खादी संस्थाएं सरकार और आयोग से नीतिगत विषयों को लेकर संघर्ष करती रही, जिसका कोई अनुकूल परिणाम प्राप्त नहीं हुआ।

खादी ग्रामोद्योग आयोग के कैलेंडर और डायरी पर गांधीजी की जगह भारत के प्रधानमंत्री मोदीजी का चरखा चलाते हुए फोटो छापने पर जो विवाद हुआ, वह अचानक नहीं है, बल्कि यह वर्तमान सरकार के आने के पश्चात् खादी ग्रामोद्योग आयोग द्वारा गांधी की खादी में जो नीतिगत बदलाव किये जा रहे हैं यह उसके विरोध स्वरूप है। वर्तमान आयोग द्वारा मोदीजी को खुश करने के चक्कर में जो भी प्रतिकूल निर्णय लिये जा रहे हैं, उससे न केवल आयोग के कर्मचारी बल्कि खादी संस्थाओं के पदाधिकारी और कार्यकर्ता भी आयोग के विरुद्ध खड़े हैं। फोटो काण्ड पर मुम्बई में आयोग के कर्मचारियों द्वारा विरोध जताने पर तो संपूर्ण देश में मानो भूचाल आ गया परंतु पूरे देश में खादी संस्थाओं द्वारा आयोग की विभिन्न नीतियों के विरोध में जो आवाज उठायी जा रही है, वह न तो मीडिया में आ रहा है और न ही विभिन्न राजनैतिक दलों के नेताओं से उसका समर्थन मिल पा रहा है। इसका अर्थ है कि खादी संस्थाओं में नेतृत्व का अभाव है और तथाकथित खादी के नेता कुछ कर पाने में असमर्थ हैं।

खादी संस्थाओं और उनके नेताओं के लिए यह एक गंभीर विचारणीय प्रश्न होना चाहिए कि खादी ग्रामोद्योग आयोग के मुट्ठीभर कर्मचारियों ने एक मुद्दा उठाया तो पूरे देश में चर्चा हुई और उसका कुछ समाधान हुआ, आयोग पर कुछ दबाव बना। परंतु उनके द्वारा उठाये मुद्दों की कोई सुनवाई नहीं हो रही है। इसका एक प्रमुख कारण भी है कि खादी ग्रामोद्योग आयोग में कर्मचारियों की दो यूनियन है। एक के अध्यक्ष भारत सरकार के मंत्री प्रकाश जावडेकर हैं तो दूसरी यूनियन के अध्यक्ष लोकसभा में शिवसेना के सांसद हर्सुल जी हैं। शिवसेना मोदी सरकार में शामिल होते हुए भी उसके नीतियों के विरोध में ज्यादा मानी जाती है और कोई ऐसा मौका नहीं चूकना चाहती, जिससे सरकार की किरकिरी हो। डायरी और कैलेंडर का मुद्दा भी उन्होंने लपक लिया। उसके बाद आयोग और सरकार की जो फजीहत हुई वह सबके सामने है।

इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि खादी संस्थाओं को भी अपनी गैर-राजनैतिक छवि को समाप्त कर राजनैतिक दलों के शरण में जाना चाहिए। वे गांधी के रचनात्मक भूमिका में हैं और उन्हें अपने को वहीं तक केन्द्रित रखना चाहिए, लेकिन गांधी के आत्मबल के साथ। खादी और ग्रामोद्योग आयोग तथा सरकार तो गांधी की खादी को भूल गयी है, परंतु खादी संस्थाओं पर ही यह आशा टिकी हुई है कि वे उसे बचा कर रखे। आज अधिकतर खादी संस्थाओं का आत्मविश्वास तो डगमगाया हुआ है परंतु उससे भी बड़ी बात यह है कि उन्हें सरकारी सब्सिडी के सहारे की आदत सी पड़ गयी है। उनके अंदर जो सामर्थ्य, शक्ति और ऊर्जा है, वे उसे पहचान नहीं पा रहे हैं, भूल गये हैं। पर जिन्होंने पहचान लिया है वे संस्थाएं अपने पैरों पर खड़ी हैं। उन्हें सरकारी सहायता की आवश्यकता नहीं है।

खादी के सुधार के लिए समय-समय पर सरकार द्वारा बहुत-सी समितियां बनायी गयी जिसमें अशोक मेहता कमेटी, पंत कमेटी, रामक्रिशनय्या कमेटी, पूर्व प्रधानमंत्री श्री पी. वी. नरसिम्हा राव की अध्यक्षता में हाई पॉवर कमेटी आदि प्रमुख हैं। पर कभी भी इन समितियों के सुझावों को पूर्ण रूप से लागू नहीं किया गया, जिसके फलस्वरूप आज खादी और संस्थाओं की यह दुर्दशा है। केवल सरकार को दोष देने से ही काम नहीं चलेगा। खादी संस्थाओं के शीर्ष संगठन खादी मिशन और सर्व सेवा संघ भी इसके लिए बहुत कुछ नहीं कर पाये। सर्व सेवा संघ ने तो विरासत में मिली इस धरोहर को इस आशा में खादी ग्रामोद्योग आयोग को सौंप दिया था कि खादी के अधिकतर वरिष्ठ लोग आयोग में खादी का कार्य देखने लगे थे। परंतु समय के साथ साथ पुराने अनुभवी लोग जाते गये और आने वाले नये लोगों को इसकी समझ थी नहीं। सर्व सेवा संघ की खादी समिति अब कुछ सक्रिय हुई है। उसने अपनी एक रिपोर्ट भी सरकार को सौंपी है। आवश्यकता इस बात की भी है कि वस्त्र मंत्रालय की टेक्सटाइल पालिसी की भांति भारत सरकार खादी के जानकार लोगों को लेकर एक खादी पालिसी बनाये जिसे वास्तव में अमलीजामा पहनाया जाये।

यह कितनी अजीब बात है कि खादी ग्रामोद्योग आयोग एक मीटर भी खादी का कपड़ा नहीं बनाता और पूरे देश में ढिंढोरा पीट रहा है कि जैसे वही गांव-गांव जाकर कत्तिन-बुनकरों से कपड़ा बनवा रहा है। अत्यधिक वेतन पाने वाले इसके कर्मचारी तो अपनी कुर्सी से हिलते भी नहीं, अधिकारी वातानुकूलित कमरों से बाहर निकलते नहीं और आयोग कभी फैशन के नाम पर, कभी भवन के उद्घाटन के नाम पर, कभी चरखे को एयरपोर्ट पर तो कभी कनाट प्लेस, दिल्ली में लगा कर तो कभी कैलेंडर और डायरी से गांधी को हटाकर तो कभी जोड़कर खोखली वाहवाही बटोर रहा है। वास्तव में खादी का उत्पादन करने वाली संस्थाओं का तो उत्पीड़न हो रहा है। उनकी समस्याओं को न तो खादी आयोग और न ही सरकार सुनती है। केवल नादिरशाही हुक्म देती है, शोषण करती है, जिसकी कोई सुनवाई भी नहीं होती।

आरंभ में खादी ग्रामोद्योग आयोग खादी के कार्य को सामाजिक और रोजगार परक कार्य मानते हुए अपनी नीति तय करता था और उसी अनुरूप सहायता का स्वरूप बनाता था। आयोग ने हाल में ही निर्णय लिया है कि वह अपने खर्चों की पूर्ति के लिए 'न लाभ न हानि' के आधार पर काम करने वाली संस्थाओं से विभिन्न खर्चों की वसूली करेगा।

खादी का प्रमाण पत्र लेने या नवीनीकरण करने के लिए फीस 5 हजार रुपये थी, उसे मई 2016 में बढ़ाकर 50 हजार रुपये कर दिया गया है। संस्थाओं के काफी विरोध करने के बाद इसे 30 हजार रुपये कर दिया गया यानी 6 सौ प्रतिशत बढ़ा दिया गया है। इसी प्रकार आयोग ने अगस्त 2015 से ऑडिट फीस लेने का भी निर्णय लिया है जबकि संस्थओं को चार्टर्ड एकाउंटेंट से ऑडिट करवाना पहले से ही आवश्यक है। इसकी न्यूनतम राशि 5 हजार रुपये तथा अधिकतम 30 हजार रुपये रखी गयी है। पिछले 60 वर्षों में ऐसा कभी नहीं हुआ।

आयोग ने देश की सभी संस्थाओं के विरोध के बावजूद खादी मार्क लागू किया जिसकी शर्तें खादी के स्वरूप को नष्ट करने वाली है। जून 2016 से खादी संस्थाओं के लिए प्रति पांच वर्ष फीस 10 हजार, व्यक्तिगत 25 हजार तथा कंपनी के लिए 5 लाख रुपये रखा गया है। तात्पर्य यह है कि खादी की जो पवित्रता खादी संस्थाओं द्वारा गांवों में रोजगार देने के लिए बनाकर रखी गयी थी, वह खुले बाजार के हवाले कर दी गयी है। सरकार ने सिल्क मार्क, हैंडलूम मार्क आदि भी बनाये हैं परंतु यह स्वेच्छिक है। इसे लेने के लिए उत्पादन या बिक्री करने वालों पर किसी प्रकार का दबाव नहीं बनाया जाता या उनकी बांह नहीं मरोड़ी जाती। इतना ही नहीं जून 2016 से खादी आयोग ने संस्थाओं की कुल बिक्री पर 2 प्रतिशत रायल्टी वसूलने का निर्णय लिया है, जिसे काफी विरोध के बाद स्थगित किया गया है। यह सब सातवें वेतन आयोग की करामात है कि आयोग अपने कर्मचारियों के खर्चे पूरे करने के लिए इस प्रकार के हथकंडे सरकार के दबाव में अपना रही हैं। फीस/मूल्यों में इस प्रकार की बढ़ोत्तरी किसी भी क्षेत्र में नहीं होती, चाहे वह शिक्षा, उद्योग, व्यापार, कृषि, बिजली, पानी या आम उपभोक्ता से जुड़ी कोई भी वस्तु क्यों न हो।

आयकर से छूट प्राप्त करने के प्रमाण पत्र जारी करने के लिए आयोग संस्थाओं से एक हजार रुपये का शुल्क लेता था। परंतु जनवरी 2016 से आयोग ने न्यूनतम शुल्क 5 हजार और अधिकतम 20 हजार रुपये प्रतिवर्ष निर्धारित कर दिया है। यह स्पष्ट है कि गांधीजी के समय से लेकर अब तक खादी को जिन आदर्शों पर चलाया गया उस व्यवस्था को छिन्न-भिन्न कर दिया गया है।

इसके अतिरिक्त भी खादी संस्थाओं और करीगरों को कई समस्याओं से जूझना पड़ रहा है। संस्थाओं पर यह दबाव डाला जा रहा है कि पूनी खादी ग्रामोद्योग आयोग के पूनी संयंत्रों से ही ले, जिसकी कीमत बाजार में उपलब्ध पूनी से डेढ़गुना अधिक और गुणवत्ता बहुत ही घटिया है, जिससे उत्पादन कम और खादी की कीमत अधिक हो जाती है। यदि बाजार में पूनी 100 रुपये है तो आयोग की पूनी 150 रुपये है।

देश भर में सरकार लगभग हर क्षेत्र चाहे वह औद्योगिक घराने हो या कृषि का क्षेत्र सभी के लोन माफ करती है। यहां तक कि हैंडलूम क्षेत्र के लिए भी यूपीए सरकार ने हजारों करोड़ रुपये के लोन माफ किये परंतु खादी वालों की कोई सुनवाई नहीं, ना तो तब और ना ही अब। खादी ग्रामोद्योग आयोग द्वारा खादी क्षेत्र के संपूर्ण कर्ज रुपये 2408.02 करोड़ को मुक्त कराने हेतु प्रस्ताव काफी समय पूर्व सरकार को भिजवाया जा चुका है। आयोग के आंकड़ों के आधार पर सरकार पर केवल रुपये 832.65 करोड़ का आर्थिक भार होगा। संस्थाओं ने बैंक कर्ज से तीनगुना अधिक तक भुगतान कर दिया है। इस विषय का अध्ययन भारत सरकार/आयोग द्वारा नियुक्त विशेषज्ञ संस्थाओं/विभागों द्वारा किया जाकर खादी संस्थाओं को कर्ज-मुक्त करने की अनुशंसा की जा चुकी है। फिर भी इस तरफ कोई ध्यान नहीं दिया जा रहा है। खादी के कार्य एवं संस्थाओं की मजबूती के उद्देश्य से यह आवश्यक है कि सरकार यह लोन माफ करे।

खादी की समस्याओं से छुटकारा पाने के लिए यह आवश्यक है कि खादी ग्रामोद्योग आयोग के साथ-साथ सरकार पर भी दबाव बनाया जाये ताकि वे अपनी नीतियों में परिवर्तन कर खादी के मूल स्वरूप को बनाये रखे और यदि नीतिगत और तकनीकी तौर पर कोई परिवर्तन है तो खादी संस्थाओं को विश्वास में ले कर करे। खादी समिति और संस्थाओं को भी अपनी भूमिका नये सिरे से पहचानने की आवश्यकता है जो चरखा संघ के समय से चला आ रहा है तभी गांधी की खादी का सपना साकार हो सकेगा। ❑

''मेरे विचार से यज्ञ के रूप में कताई सबसे उपयुक्त और अपनाने लायक शरीर-श्रम हो सकता है। मैं इससे अधिक पवित्र या राष्ट्रीय अन्य किसी वस्तु की कल्पना नहीं कर सकता कि हम सब घंटेभर रोज वही परिश्रम करें जो गरीबों को करना पड़ता है और इस प्रकार हम उनके साथ और उनके द्वारा सारी मानव-जाति के साथ एक हो जायें। मैं इससे अच्छी ईश्वर-पूजा की कल्पना नहीं कर सकता कि उसके नाम पर गरीबों के लिए मैं भी उसी तरह श्रम करूं जैसे वे करते हैं। चरखे में दुनिया की दौलत का अधिक न्यायपूर्ण बंटवारा निहित है।''

– गांधी (यंग इंडिया, 20.10.1921)

पत्र

सर्वोदय अमृत-रस

सम्मानीय मित्रो!

हम आप लोगों से प्राप्त प्यार के प्रति अत्यन्त आभारी हैं।

यह प्यार, आधुनिक विश्व में स्वार्थ, घृणा, हिंसा, संसार विजय की तृष्णा के घुलते जहर से उबरने के लिए महात्मा गांधी आदि महापुरुषों द्वारा समता, सादगी, प्रेम, सहानुभूति, सहयोग, विश्वास आदि सात्विक गुणों के मिश्रण से तैयार किया गया 'सर्वोदय अमृत रस' के ही प्रति हैं—

'सर्वोदय अमृत रस' की है,
बड़ी अनोखी चाल।
ज्यों ज्यों बांटें, त्यों-त्यों बढ़े,
बांटनहार निहाल।।'

हम सब जानते हैं कि अपनी श्रमशक्ति से उत्पादन में वृद्धि करते हुए, धरती माता में जन्म लेने वाले सबके पोषण की व्यवस्था धरती माता के पास है। यह भी सब जानते हैं कि हम अपने पिछले मनुष्य (कमैयोनि) जन्मों की कमाई की पैदावार ही सुख-दुख, जन्म-मृत्यु लेकर इस मनुष्य जन्म में आये हैं। उसमें अब कोई बदलाव नहीं हो सकता, वह अवश्य पार करना ही होगा।

हम हाथ-पैर, हृदय, बुद्धि लेकर फिर से इस मनुष्य कर्मयोनि में आये हैं, यह खेत है। जैसी फसल हम यहां बोयेंगे, वही फसल हमें मिलेगी। अतः अपना भविष्य-विधाता हम स्वयं हैं। हमारा भविष्य हमारे सद्कर्मों या दुष्टकर्मों पर निर्भर कराते हुए, ईश्वर स्वयं निर्लिप्त है। ईश्वर प्रदत्त हाथ-पांव, हृदय-बुद्धि का उपयोग हमने दूसरों के प्रति कैसे किया है, वही बीज हमारी आज की फसल है। अब हम जैसा बीज बोयेंगे वैसी ही फसल के लिए रहना होगा।

हमारी बुद्धि को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करने, युग पुरुष महात्मा गांधीजी जैसे मार्गदर्शक द्वारा सत्य, प्रेम, करुणा आदि के सम्मिश्रण से सर्वहितकारी सर्वोदय अमृत रस प्रदान किया गया है, आइए, हम सभी भी पान करें और दूसरों को भी दें।

''अंधी भौतिक दौड़, राजनैतिक उठा-पटक और शीर्ष पर पहुंचने की होड़ के असाध्य रोगों से छुटकारा पाने के लिए युगपुरुष महात्मा गांधी ने समता, सादगी, प्रेम, सहानुभूति और सहयोग के सम्मिश्रण से 'सर्वोदय अमृत रस' तैया कर नयी पीढ़ी को सौंपा है।''

यह 'सर्वोदय अमृत रस' जितना ही बांटते जाते हैं, उतना ही बढ़ता जाता है।''

–मानसिंह राव, कोटद्वार

संपादक जी!

नोट पर गांधी नहीं तो कौन?

हरियाणा के मंत्री अनिल बिज का कहना है कि खादी आयोग द्वारा *चरखे* से गांधी को हटाये जाने की तरह अब *नोटों* से भी उनकी तस्वीर हटा दी जावेगी। प्रश्न यह है कि अगर नोटों से उनकी तस्वीर हटा दी गयी, तो लगायी किसकी जावेगी? हो सकता है *हेडगेवार जी* या *गुरु जी* की लग जाये! हो सकता है *गोडसे* की ही लग जाये। आखिर तो गांधी जी को हटाने में सबसे बड़ा योगदान तो उसी का था! *साक्षी महाराज* जैसे लोग तो उसे सबसे बड़ा *देशभक्त* मानते हैं और उसके *मंदिर* बनाने की भी बात करते हैं।

बेचारे *बाजपेयीजी* की यह हसरत कभी पूरी नहीं हुई कि अपने बूते सरकार बनाने पर अपने सपनों का भारत बनायेंगे। पर अब तो भाजपा ने अपने बूते सरकार बना ली है, तो अब वक्त आ गया है कि—गांधी से, नेहरू से और सबसे हिसाब चुकता किया जावेगा! अभी तो गांधी का चरखा ही छीना है। बिज की मानें तो नोटों से भी गायब हो जायेंगे। जब नोट गायब हो सकते हैं, तो गांधी क्यों नहीं गायब हो सकते? आखिर उन्हें *धरती से गायब* करने में भी तो *ऊपर वाले* का हाथ कहां था? **–किशनगिरि गोस्वामी,** जैसलमेर (राजस्थान)

महोदय,

जनवरी 16-31, 2017 का अंक प्राप्त हुआ है, लेकिन अभी फरवरी का पहला पक्ष का अंक नहीं मिला है, जबकि फरवरी का दूसरा अंक 16-28 वाला प्राप्त हो चुका है।

मैं इसलिए यह पोस्टकार्ड लिख रहा हूं कि मैंने कुछ दिन पूर्व आपको लिखा था कि फरवरी, 16-28 का अंक और जनवरी 1-15 का अंक प्राप्त हो चुका है, परंतु बीच के अंक नहीं मिले हैं। अब यदि फरवरी प्रथम अंक आप भेज सकें तो कृपा होगी।

30 जनवरी, निर्वाण दिवस, श्रद्धांजलि अंक में के. विक्रमराव और 'दो राहे पर खड़ा भारतीय समाज' अजीत साही के लेख बहुत ही जानकारी पूर्ण हैं।'' 'प्रपंच के सहारे हत्यारे का महिमा मंडन' में के. विक्रमराव ने नाथूराम गोडसे के बारे में अब तक अज्ञात उसके कारनामे प्रस्तुत करके पाठकों को और हम सर्वोदय कार्यकर्ताओं को बहुत लाभ पहुंचाया है। कृपया ऐसे ही जानकारीपूर्ण लेख मिलते रहेंगे, ऐसी आशा है। धन्यवाद!

–धूमसिंह नेगी,
पिपलेथ, उत्तराखंड

× × ×

पत्रिका के संदर्भ में आपके उद्गार प्राप्त कर खुशी हुई। आपके पत्र से यह भी ज्ञात हुआ है कि सर्वोदय जगत के कुछ अंक आपको प्राप्त नहीं हुए हैं। हमारी कोशिश रहती है कि पत्रिका के सभी अंक सभी पाठकों को नियमित मिले।

आपको जो अंक नहीं मिले हैं, उन्हें पुनः भेजा जा रहा है।

आप सर्वोदय जगत का इसी तरह मार्गदर्शन करते रहें, हमें खुशी होगी।

–संपादक

रामधारी सिंह 'दिनकर' की दो कविताएं : श्रद्धांजलि

शोक की संतान

हृदय छोटा हो
तो शोक वहां नहीं समाएगा,
और दर्द दस्तक दिए बिना
दरवाजे से लौट जाएगा।

टीस उसे उठती है
जिसका भाग्य खुलता है,
वेदना गोद में उठाकर
सबको निहाल नहीं करती
जिसका पुण्य प्रबल होता है
वह अपने आंसुओं से धुलता है।

युगों से हमारा-तुम्हारा
यही सम्बन्ध रहा है
हम रास्ते में फूल बिछाते हैं
तुम उन्हें मसलते हुए चलते हो।

मगर हम? तुम जी रहे हो
हम जीने की इच्छा को
तोल रहे हैं,
आयु तेजी से भागी जाती है
हम अंधेरे में
जीवन का अर्थ
टटोल रहे हैं।

असल में हम कवि नहीं
शोक की संतान हैं,
हम गीत नहीं बनाते
पंक्तियों में वेदना के
शिशुओं को जानते हैं।

तूफान के पिता गांधी

देश में जिधर जाता हूं,
उधर ही एक आह्वान सुनता हूं।
'जड़ता को तोड़ने के लिए
भूकम्प लाओ।
घुप्प अँधेरे में फिर
अपनी मशाल जलाओ।
पूरे पहाड़ को हथेली पर उठाकर
पवनकुमार के समान तरजो।
कोई तूफान उठाने को
कवि, गरजो, गरजो, गरजो।'
सोचता हूं,
मैं कब गरजा था?
जिसे लोग मेरा गर्जन समझते हैं,
वह असल में गांधी का था,
उस आंधी का था,
जिसने हमें जन्म दिया था।
तब भी हमने गांधी के
तूफान को ही देखा,
गांधी को नहीं।
वे तूफान और गर्जन के
पीछे बसते थे।
सच तो यह है कि अपनी लीला में
तूफान और गर्जन को
शामिल होते देख
वे हँसते थे।
तूफान मोटी नहीं,
महीन आवाज से उठता है।
वह आवाज,
जो मोम के दीप के समान
एकान्त में जलती है,
और बाज नहीं,
कबूतर की चाल से चलती है।
गांधी तूफान के पिता
और बाजों के भी बाज थे
क्योंकि
वे नीरवता की आवाज थे। ❑

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए महामंत्री, शेख हुसैन द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा प्रिन्टेक, इंडियन प्रेस कॉलोनी, मलदहिया, वाराणसी से मुद्रित। प्रधान संपादक : बिमल कुमार / संपादक : अशोक मोती।